मुनि कनकामर विरचित

करकण्डु चरित्र

• सम्पादक •

आचार्य वसुनंदी मुनि

श्री निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजी.)

संस्करण : प्रथम-1500 प्रतियाँ सन् 2007
द्वितीय-1000 प्रतियाँ सन् 2019
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
श्री निर्ग्रंथ ग्रंथमाला, समिति (रजि०)

ग्रंथ : करकण्डु चरित्र
ग्रंथ प्रणेता : मुनि श्री कनकामर विरचित
पावन आशीष : प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री विद्यानन्द जी मुनि
सम्पादक : आचार्य वसुनंदी मुनि
प्रकाशक : श्री निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजीकृत), दिल्ली
मूल्य : स्वाध्याय
ग्रंथ प्राप्ति स्थान : श्री निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला, समिति (रजि०)
मुद्रक : श्री जम्बूस्वामी तपस्थली, बोलखेड़ा, भरतपुर (राज.)
प्रिंटर : ईस्टर्न प्रेस, नारायण, नई दिल्ली-110028 फोन: 9312401976

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं ॥17 ॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्तिप्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धानं के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती है। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते ही हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्ति नित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी)बड़े-बड़े ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

श्री शुभमिति
आषाढ सुदी पूर्णिमा
वी. नि. सं.-2076
गुरु पूर्णिमा के
पावन अवसर पर

कश्चिदल्पज्ञ सूरी श्रमणः जिन चरण चञ्चरीक
नोएडा सै.-50
16-07-2019

पुण्यार्जक परिवार

क्र.	नाम	स्थान	निवासी
1	अनिल कुमार जैन (नेपाल)		दिल्ली
2	डा. नीरज जैन	पश्चिम विहार	दिल्ली
3	रमेश चंद गर्ग	सफदरजंग एन्कलेव	दिल्ली
4	रिषभ जैन	रोहिणी	दिल्ली
5	अनिता जैन	ग्रीन पार्क	दिल्ली
6	पी.सी. जैन	कोशी वाले	दिल्ली
7	निकुंज जैन	जी.के.-1	दिल्ली
8	राजीव जैन	सी.आर. पार्क	दिल्ली
9	प्रवीन जैन (टोनी)	ग्रीन पार्क	दिल्ली
10	श्रवण कुमार जैन	ग्रीन पार्क	दिल्ली
11	मुकेश कुमार जैन	यमुना विहार	दिल्ली
12	मीनु जैन	कृष्णा नगर	दिल्ली
13	रश्मि कांत सोनी	जयपुर	जयपुर
14	आशुतोष जैन	कृष्णा नगर	दिल्ली
15	नवनीत जैन	यमुना विहार	दिल्ली
16	डा. अरुण कुमार जैन (यू.एस.ए.)	रोहिणी	दिल्ली
17	योगेश जैन	मेरठ	मेरठ
18	अजय जैन	मेरठ	मेरठ
19	अक्षत जैन	मेरठ	मेरठ
20	राकेश जैन	रेस वाले	मेरठ
21	विपिन जैन	असौड़ा वाले	मेरठ
22	अंकुर जैन	अरिहंत ज्वैलर्स	मेरठ
23	अशोक जैन	हर्रा वाले	मेरठ

क्र.	नाम	स्थान	निवासी
	अलोक जैन	सरधना	मेरठ
24	…शोक जैन शाहवजाज		अज़मेर
25	पूरन चंद जैन		अजमेर
27	वीरेंद्र जैन	बाड़मेर वाले	अजमेर
28	राजेन्द्र जैन	केलवा वाले	अजमेर
29	पवन बढ़ारी		अजमेर
30	गौरव जैन		एटा
31	विनोद जैन	मिलेनियम	फिरोजाबाद
32	सोनू जैन (स्पोर्ट्स)		फिरोजाबाद
33	महावीर जैन संदीप जैन		फिरोजाबाद
34	अनिल जैन		ग्वालियर
35	पवन चौधरी		अलवर
36	विजय जैन		अलवर
37	रमेश जैन		अलवर
38	घनश्याम जैन		अलवर
39	अशोक जैन	शास्त्री पार्क	अलवर
40	सुरेंद्र जैन		अलवर
41	गुलाब चन्द जैन	गुलावली मसाला	अलवर
42	अरून जैन		अलवर
43	एन.के. जैन		अलवर
44	दिलीप जैन		अलवर

क्र.	नाम	स्थान	निवासी
45	पवन जैन भौंच	रामपुर वाले	[illegible]
46	मनोज कुमार जैन	सैक्टर 61	[illegible]
47	देवेंद्र जैन	सैक्टर 41	नोएडा
48	अजय जैन	वैशाली	नोएडा
49	अनिल जैन		नोएडा
50	सचिन जैन		गाजियाबाद
51	दर्शन दयाल जैन		हापुड़
52	चन्द्र सैन जैन	कामा	पलवल
53	ओम प्रकाश जैन		कोसी
54	श्रीमती रजनी जैन		भरतपुर
55	राकेश कुमार जैन	यमुना विहार	मेरठ
56	शीतल प्रसाद जैन	गौतम नगर	दिल्ली
57	राजेश कुमार जैन	इंदिरा कॉलोनी	दिल्ली
58	सुरेश कुमार जैन		दिल्ली
59	विनोद कुमार जैन		फिरोजाबाद
60	लिपि जैन		नोएडा
61	अमित जैन		नोएडा
62	आदेश जैन		फरीदाबाद

आद्य-वक्तव्य..............

आचार्य वसुनंदी मुनि

प्रस्तुत ग्रंथ "करकण्डु चरित्र" मुनि श्री कनकामर जी द्वारा आसाइय नगरी में विद्यमान राजा विजय पाल के राज्य में स्थित नगर श्रेष्ठि के विनम्र, धर्मानुराग व सदाग्रह से रचा गया था। इस ग्रंथ की रचना सम्भवतः ईस्वी सन् 965 के पूर्व में हो चुकी थी क्योंकि कवि पुष्पदंत ने अपने ग्रंथों में उक्त शास्त्र व मुनि श्री का उल्लेख किया है।

यह आसाइय नगरी (जहाँ के भव्य जिनालय में मुनि श्री ने उक्त ग्रंथ की रचना की।) संभव है इटावा (उत्तर प्रदेश) से 9 मील दूर पर स्थित अतिशय क्षेत्र आसईखेड़ा ही हो अथवा मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल के समीप में विद्यमान आसापुरी ही हो जहाँ भगवान श्री शान्तिनाथ की सोलह फीट ऊँची प्रतिमा विद्यमान है तथा अन्य भी कई प्राचीन मूर्तियों के भग्नावशेष विद्यमान हैं। अस्तु!

यह ग्रंथ पूज्य मुनि श्री कनकामर जी की मौलिक कृति है जिसमें उन्होंने अपभ्रंश भाषा में दस संधियों में कुल 211 (17 + 21 + 22 + 17 + 19 + 16 + 16 + 20 + 24 + 29) कवडकों के द्वारा करकण्डु स्वामी का पावन चरित्र रचा है। इस ग्रंथ में तेरह प्रकार के (1. पज्झटिका, 2. अलिल्लह, 3. पादाकुलक, 4. समानिका, 5. तूणक, 6. स्त्रग्विणी, 7. दीपक, 8. सोमंराजी, 9. भ्रमरपदा, 10. चित्रपदा, 11. प्रमाणिका, 12. चन्द्रलेखा, 13. धता) छंद हैं; भाषा अत्यंत सरल सुगम व रोचक है। यद्यपि अपभ्रंश भाषा कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है किन्तु संस्कृत के सभी विकृत व देश प्रचलित रूपांतरों को अपभ्रंश भाषा कहा जाता है। संस्कृत के एक शब्द के कई अपभ्रंश शब्द बनते हैं। यथा – गौ शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि। यद्यपि वर्तमान काल में अपभ्रंश भाषा, स्वतंत्र भाषावत् साहित्य में मान्यता को प्राप्त है। ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दी में भी अपभ्रंश भाषा का क्वचित् कदाचित् प्रयोग किया जाता था जैसे कि महर्षि कृत पातांजलि भाष्य में किया गया है।

मुनि श्री कनकामर जी ने अपने आप को चन्द्रऋषि गोत्रीय उल्लेख किया है। संभव है ये ***श्री भूषण देव के शिष्य मंगलदेव जी*** के शिष्य रहे हैं। मंगल देव जी ने ***धर्मरत्नाकर/शास्त्र रत्नाकर*** नामक ग्रंथ लिखा था, इन्होंने भी उक्त ग्रंथ में अपने आप को ***चन्द्रर्षि गोत्रीय*** होने का संकेत दिया है। इससे अधिक इनका परिचय हमें उपलब्ध नहीं हो सकता है।

"दृष्टांते स्फुटिता मतिः" दृष्टांत से मति/बुद्धि स्फुटित/प्रखर होती है। अतः जैन धर्म/ दर्शन में प्रथमानुयोग के शास्त्र विपुल/प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यद्यपि

जिनागम को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया है। 1. प्रथमानुयोग 2.करणानुयोग 3. चरणानुयोग, 4. द्रव्यानुयोग इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी अनेक भेद संभव है। फिर भी प्रथमानुयोग के बारे में यह कहा गया है। कि "संसार के सभी धर्म/ दर्शन या मतों में जितने कथाओं/पुराणों/चरित्रों के ग्रंथ होगें/ हैं। उससे कई गुने प्रथमानुयोग के ग्रंथ जैन दर्शन में अभी भी विद्यमान हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ करकण्डु चरित्र की संक्षिप्त कथावस्तु इस प्रकार दी जाती है जिससे स्वाध्याय प्रेमी इसे जानकर आगे शास्त्र पढ़ने को उत्सुक हों।

प्रथम संधि–अंगदेश की चंपानगरी में धाड़ीवाहन राजा राज्य करते थे। उनका विवाह कौशाम्बी के राजा वसुपाल की पुत्री पद्मावती के साथ हुआ। रानी पद्मावती जब गर्भवती हुई तब उसे हाथी पर सवार हो वन भ्रमण का दोहला हुआ। राजा रानी हाथी पर सवार होकर वन भ्रमण को गये, तब हाथी दोनों को लेकर जंगल की ओर द्रुत गति से दौड़ा। राजा वृक्ष की शाखा पकड़ कर रह गये, रानी तालाब में कूद गयीं, पुनः कुछ दिनों बाद शमशान में रानी ने बालक को जन्म दिया।

द्वितीय संधि–उस पुत्र को एक मातंग (जो विद्याधर ही था शाप से मातंग हो गया था) ले गया, उसका पालन पोषण किया, उसके हाथ में खाज होने से उस बालक का नाम करकण्डु रखा। दंतिपुर के राजा का देहावसान हो गया। तब राजा का चुनाव हाथी के द्वारा किया गया, हाथी ने कलश से करकण्डु का अभिषेक किया सभी ने मिलकर करकण्डु को राजा बना दिया।

तृतीय संधि– कुछ समय बाद करकण्डु का विवाह गिरिनगर की राजकुमारी मदनावली से हो गया एक बार चम्पानगरी के दूत ने करकण्डु को चम्पानगरी की अधीनता स्वीकार करने का संदेश दिया; करकण्डु ने इसे स्वीकार न कर युद्ध किया, युद्ध में पद्मावती ने आकर पिता व पुत्र का सम्मेलन अपना परिचय देकर कराया जिससे चम्पानगरी का राजा धाड़ीवाहन पुत्र को राज्य देकर वैराग्य को प्राप्त हुआ।

चतुर्थ संधि– करकण्डु ने द्रविड़, चोल, चेर, पाँड्य देश के ऊपर चढ़ाई कर दी। मार्ग में तेरहपुर नगर में पहुँचा, वहाँ के राजा शिव ने भेंट चढ़ाई तथा *"पहाड़ों के ऊपर वामी है, उसकी पूजा नित्य एक हाथी करता है"* यह बात बताई। राजा ने वामी को खुदवाया उसमें भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा निकली, उसका पूजन प्रक्षालन किया, बाद में सिंहासन की गाँठ को तुड़वाया जिससे सारी गुफा जल से पूरित हो गयी। पुनः एक विद्याधर ने जल रोकने का निदान बताया तथा एक कथा सुनाई।

पंचम एवं षष्ठम संधि– रथनूपुर नगर में नील-महानील दो विद्याधर भाई थे। शत्रु से पराजित हो यहाँ तेरापुर में रहने लगे; जैन थे, मुनि उपदेश से गुफा मन्दिर बनवाया। मलय देश पर्वत पर उन्होंने रावण के वंशज द्वारा बनवाये जिन मन्दिर में

सुन्दर मूर्ति को देखा, उन्होंने विचार किया कि ऐसी मूर्ति हम भी बनवायेंगे, इस उद्देश्य से वहाँ से मूर्ति उठाकर ले गये और तेरहपुर पर्वत की गुफा में रख दी। पुनः लंका की ओर वंदना करने चले गये। बाद में आकर मूर्ति को उठाया तो वह नहीं उठी। वहीं पर विराजमान कर दोनों भाई वैरागी हो गये, एक शुद्ध साधना के बल से स्वर्गवासी व दूसरा भाई मायाचारी से हाथी हो गया। वहाँ देव अपने भाई हाथी को सम्बोधन देने आया जिससे यह नित्य यहाँ पूजा करता है। राजा करकण्डु ने वहाँ दो गुफाऐं और बनवायीं। इसके बाद एक विद्याधर हाथी का रूप धरकर मदनावली को हर कर ले गया। करकण्डु बहुत शोकाकुल हुये किन्तु एक पूर्वभव के संयोगी विद्याधर के समझाने पर आगामी संयोग का आश्वासन देने व नरवाहन दत्त का आख्यान सुनाने पर समाधान को प्राप्त हुये और आगे बढ़े।

सप्तम संधि–राजा करकण्डु ने सिंहल द्वीप पहुँच कर रतिवेगा राजकुमारी से विवाह किया उसके बाद जब वे जलमार्ग से लौट रहे थे तब तक भीमकाय मच्छ ने उनकी नौका पर धावा बोल दिया। उसे मारने एक मल्ल जल में कूद पड़ा, मच्छ को मार दिया किन्तु तब तक करकण्डु का हरण एक विद्याधर पुत्री ने कर लिया। रतिवेगा ने शोकाकुल हो अतिशीघ्र बेड़ा किनारे पर लगाया; फिर पूजा–पाठ प्रारंभ किया जिससे पद्मावती देवी ने प्रकट हो पति संयोग का आश्वासन दिया।

अष्टम संधि–देवी ने अरिदमन का आख्यान सुनाया। रतिवेगा ने पिता की आज्ञा से करकण्डु से विवाह कर लिया। करकण्डु पुनः रतिवेगा से मिले, पुनः चोल, चेर, पाँड्य देश को हराकर अपना प्रण पूरा किया। अपना पैर उनके मस्तक पर रखा मुकुट में जिन प्रतिमायें देखकर पश्चाताप करने लगा, राज्य पुनः वापस देना चाहा किन्तु उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली और "अब हमारे पुत्र, पौत्रादि ही आपकी सेवा करेंगे" ऐसा कहा! करकंडु लौटकर पुनः तेरापुर आये, वहाँ उस विद्याधर ने मदनावली आकर सौंप दी करकंडु पुनः चंपा नगरी का राज्य करने लगे।

नवम संधि–राजा करकंडु वनमाली से मुनि श्री के आगमन को सुनकर शीलगुप्त मुनि की वंदना हेतु गया। मार्ग में पुत्र शोक से व्याकुल अबला, को देखकर वैराग्य को प्राप्त हुआ।

दशम संधि–राजा करकंडु ने मुनिश्री से तीन प्रश्न पूछे। पहला हाथ में कण्डु क्यों हुई? माता–पिता का वियोग क्यों हुआ? विद्याधर ने मदनावली का हरण क्यों किया? इसके उत्तर में मुनि श्री ने कहा–पूर्व जन्म में तू एक सेठ के धनदत्त नामक ग्वाला था। एक तालाब से कमल तोड़ा तब देव ने कहा–जो श्रेष्ठ पुरुष हो उसे चढ़ाना। तूने मंदिर में चढ़ाया किंतु कीचड़ के सने हाथों को तूने नहीं धोया था इसलिये तेरे हाथों में कंडु (खाज) हुई। पूजा करने से तू राजपुत्र हुआ है। पद्मावती पूर्व भव में श्रावस्ती नगर के सेठ की पुत्री थी उससे पूर्व भव में ब्राह्मण से दुराचार किया वह

सेठ धाड़ीवाहन बना, ब्राह्मण मर कर हाथी बना इसलिये पूर्व भव के राग से वह हाथी पद्मावती को निकालते ही ले भागा। तीसरे प्रश्न के उत्तर में मुनि श्री ने कहा कि पूर्व जन्म में करकण्डु के पास एक तोता था जिसे पिंजड़े में बड़े प्यार से रखते थे सर्प ने उसे डसना चाहा जिससे करकण्डु ने उसकी रक्षा की और उसे नवकार मंत्र दिया, उस सर्प को भी नवकार मंत्र दिया जिससे वह तोता मदनावली हुआ तथा सर्प विद्याधर हुआ पूर्व बैर के कारण ही इस विद्याधर ने मदनावली का हरण किया।

यह वृतान्त सुनकर राजा करकण्डु का वैराग्य और दृढ हो गया अपने पुत्र वसुपाल को राज्य देकर करकण्डु मुनि हो गया। उसकी माता पद्माबती भी आर्यिका हो गयी, रानियाॅभी आर्यिक बनी मुनि करकण्डु ने कठिन साधना कर घातिया कर्मों को क्षय करके कैवल्यज्ञान प्राप्त किया और अन्त शेष अघातिया कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ सभी साधुवृंदो एवं त्यागीवृतियों का सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद तथा प्रकाशक, मुद्रक व प्रूफ रीडिंग आदि कार्यों में प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष में जो महानुभाव सहयोगी रहे हैं उन्हें भी वात्सल्य पूर्वक धर्मवृद्धि व सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद।

इस ग्रंथ के संपादन कार्य में मुझ छद्मस्थ द्वारा जो भी त्रुटि रह गयी हों तो विज्ञ पाठक हंसवत् गुणग्राही दृष्टि रखते हुये शास्त्र को आद्योपांत पढ़कर आत्म कल्याण हेतु सद्ज्ञान का लाभ अर्जित करें तथा त्रुटियों के लिये संकेत देने का कष्ट करें जिससे आगामी प्रकाशन में संशोधन किया जा सके।

''इत्यलम्''

जिनचरणानुचर, संयमानुरक्त
कश्चिदल्पज्ञ सूरी श्रमण:
नोएडा सै.-50
16-07-2019

★★★★★★

करकंड चरित्र

हिन्दी अनुवाद

सन्धि—1

1. वन्दना

मैं उन श्री जिनेन्द्रदेव के चरणों का स्मरण करता हूँ जिन्होंने कामदेव का विनाश कर दिया है, शिवपुर में निवास लिया है; जो पापरूपी अन्धकार का हरण करने के लिए सूर्य हैं; जो परमात्म पद में लीन हैं और मृत्यु से रहित हैं।

अनुपम मोक्ष के सुख को देने वाले तथा देवों, नागों और मनुष्यों के इन्द्रों द्वारा सेवित, हे देव! आपकी जय हो। जय हो आपकी—जिन्होंने ज्ञानरूपी महोदधिका पार पा लिया है और उत्तम भव्यजनों को मोक्ष के मार्ग पर लगा दिया है। जो कर्मरूपी भुजंगों को दमन करने के लिए मंत्ररूप हैं, जो समस्त मंत्रों के बीज हैं और मनरूपी ग्रह के काल (विनाशक) हैं। जो चारों गतियों में पड़े हुए प्राणियों के लिए एक मात्र शरण हैं तथा कलहरति सज्जनों के दुःख-समूह का हरण करने वाले हैं। जो संयमरूपी सरोवर के राजहंस हैं एवं हंसों के समान उज्जवल बुद्धिमानों द्वारा प्रशंसित हैं। जो क्रोधरूपी अग्नि के लिए प्रचुर जलरूप हैं और जो अज्ञानतम का निवारण करने वाले और केवल-ज्ञान को धारण करने वाले हैं। जिन्होंने मोक्षरूपी शाश्वत लक्ष्मी के हृदय में अपना निवास बनाया है, जो सैकड़ों इन्द्रों द्वारा सेवित हैं और सुख के निवास हैं। जो भव्यरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्यरूप हैं, उत्तमगुण सम्पन्न हैं तथा आत्मरस के अगाधसमुद्र हैं! हे निरंजन, भवभयभंजन, भुवनमहागृहमंडन देव! आपकी जय हो। जो कोई आपके चरणों को नमस्कार करता है तथा मनमें आपका स्मरण करता है, उस मनुष्य को मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है।

2. कवि का विनय-प्रदर्शन

दिव्यवाणी सरस्वती को मनमें धारण करके तथा पण्डित मंगलदेव के चरणों का स्मरण करके मैं उस करकण्डु नरेन्द्र के चरित्र का वर्णन करता हूँ जो लोगों के कानों को सुहावना, मधुर और ललित लगने वाला है, पञ्च कल्याणक विधिरूपी रत्न से जटित है और जो गुणों के समूह से भरा हुआ एवं प्रसिद्ध है। यद्यपि दुर्जन अपने मनमें अत्यन्त वक्र होते हैं, और जनपद (साधारण लोग) नीरस और मलिन चित्त हैं। मैं स्वयं भी न व्याकरण जानता हूँ और न छन्दशास्त्र; एवं शास्त्ररूपी समुद्र के पार पहुँचने में मन्द हूँ। मेरी वाणी में लालित्य का प्रसार किसी प्रकार भी होता नहीं, और बुद्धिमान् लोगों के सम्मुख मुझे लज्जा उत्पन्न होती है। मैंने कभी कविजनों की सेवा भी नहीं की; प्रत्युत जड़ लोगों की संगति से मेरी कीर्ति मलिन हुई है। तथापि शास्त्ररूपी जल के समुद्र सिद्धसेन, श्री समन्तभद्र, अकलंकदेव, जयदेव, विशालचित्त स्वयंभू एवं वागेश्वरीगृह श्री पुष्पदन्त, इनका हृदय में स्मरण और विनय करने से मुझे जो कुछ फल प्राप्त हुआ है उसीके सहारे सुख से भरे हुए और दुःख से परिहत अपने मनोवांछित चरित्र का वर्णन करता हूँ। इसमें किसी प्रकार का कोई छल नहीं है।

3. जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र और अंगदेश का वर्णन

द्वीपों में प्रधान, द्वीपों के दीपक समान, जम्बूद्वीप से लक्षित जम्बूद्वीप है, जो लवणसमुद्र से वलय के समान वेष्टित तथा प्रमाण में एक लाख योजन है। इस जम्बूद्वीप में विशाल श्री भरतक्षेत्र है, जो गंगा और सिन्धु नदियों से विस्फुरायमान है। वह खण्ड भूमिरूपी रत्नों का निधान होने से रत्नाकर के समान शोभायमान है। ऐसे इस भरत क्षेत्र में रमणीक अंग देश है, जैसे मानो पृथ्वी-महिला ने दिव्य वेष ही धारण किया हो। जहाँ के सरोवर में कमल उग रहे हैं, मानो धरणी सुख पर सुन्दर नयन ही हों। जहाँ किसान स्त्रियों के रूप में स्नेहासक्त होकर दिव्य देहधारी यक्ष निश्चल हो गये हैं। जहाँ बालिकाएँ चरते हुए हरिणों के झुण्डों को अपने गीत से मोहित करके धान के खेतों की रक्षा कर लेती हैं। जहाँ पथिक दाख का भोजन कर अपने यात्रा के दुःख से मुक्त होते और स्थल कमलों पर सुख से जाते

हैं। जहाँ की नहरों के पानी में कमलों की पंक्ति अति शोभायमान होती है, जैसे मानो मेदिनी हँस उठी हो। ऐसे धन-धान्य से पूर्ण उस रमणीक अंग देश में बड़ी मनोहर, जननयन प्यारी, महीतल में श्रेष्ठ और गुणों से भरी हुई चम्पा नाम की नगरी है।

4. चम्पा नगरी का वर्णन

वह चम्पा नगरी जल-भरी परिखा से घिरी होने के कारण, सागर से वेष्टित पृथ्वी के समान शोभायमान है। वह अपने ऊँचे प्रासाद-शिखरों से ऐसी प्रतीत होती है मानो अपनी सैकड़ों बाहुओं-द्वारा स्वर्ग को छू रही हो। वहाँ विशाल जिनमंदिर ऐसे शोभायमान हैं, मानो निर्मल और अभंग पुण्य के पुंज ही हों। घर-घर रेशम की पताकाएँ उड़ रही हैं, मानो आकाश में श्वेत सर्प सलबला रहे हों। वह पचरंगे मणियों की किरणों से दैदीप्यमान हो रही है, मानो मदन ने अपनी कुसुमांजलि ही चढ़ायी हो। वह चित्रमय घरों से ऐसी शोभायमान है, जैसे मानो वे देवों के मनोहर विमान ही हों। नयी केशर की छटाओं की वहाँ ऐसी शोभा है कि मानो वह कह रही हो कि मदन का समरांगण यही तो है। वहाँ स्थान-स्थान पर रक्त-कमल बिखरे हुए हैं, मानो वह पुकार-पुकार कर कह रही है कि मैं ही सैकड़ों प्रकार के फलों को धारण करती हूँ। वहाँ भगवान् वासुपूज्य के माहात्म्य से पुरुष कामी होकर कामदेव द्वारा जीते नहीं जाते।

इस प्रकार की उस चम्पा नगरी में शत्रुओं का नाश करने वाला मदरूपी वृक्ष के लिए हाथी के समान धाडीवाहन प्रभु हुआ, जो समस्त कलाओं और गुणों से युक्त, गुरुजनों का भक्त तथा विद्याओं के सागर का पारगामी था।

5. धाडीवाहन राजा का वर्णन

राजा धाडीवाहन धर्मरूपी महारथ के धुरे को धारण करता था तथा अनाथों, दीनों और दुखियों का सहारा था। उसकी कीर्ति से भुवनतल धवल हो रहा था और दान से सकल जन प्रसन्न थे। सुरजन भी उसके गुणों की कीर्ति गाते थे; किन्तु

अरिजन भयभीत होकर संचार नहीं कर पाते थे। उसके मुखकमल में सरस्वती शोभायमान थी और श्रीवक्षस्थल में लक्ष्मी निवास करती थी। उसका हाथ धन देने के लिए तो पसरता था, किन्तु उसका धनुष प्राणी का वध करने के लिए सरसंधान नहीं करता था। उसकी मानो आज्ञा मात्र से आहत व लँगड़े होकर हरिण महीतल पर (अन्न का नाश करते हुए) परिभ्रमण नहीं करते थे। सज्जनों के लिए उसका सुख सौम्य और पुण्यवान् दिखायी देता था; किन्तु दुर्जनों को चढ़ती हुई भौंहों युक्त भीषण। उसका मन धर्म-राग से रंजित था और एक क्षणमात्र भी कभी पाप से लिप्त नहीं होता था। उसका मन जलधि के समान गंभीर, मेरुवत् धीर व गगनवत् विशाल था। उसके परिजन भक्त और गुणानुरक्त थे। इस प्रकार वह राजा जगत् का मण्डन ही हो गया था।

6. राजा का प्रेम-जागरण और विवाह

एक दिन राजा धाडीवाहन ने कुसुमपुर को गमन किया। वहाँ उन्होंने एक सुन्दरी को देखा जिसका पालन-पोषण वहाँ के एक मालीने किया था। उस मनोहर कन्या को देखकर राजा कामदेव के मद से पीड़ित हो उठा। विरहरूपी अग्नि के ताप से सन्तप्त होकर राजा ने एक मनुष्य से पूछा—हे मित्र! कहो तो वह किसकी बालिका है। दिखायी तो ऐसी देती है जैसे कामरूपी वृक्ष की एक फली हुई डाल ही हो। उस मनुष्य ने राजा को बात बतायी कि वह सुन्दरगात्री माली की पुत्री है। राजा ने तुरन्त कुसुमदत्त नाम के माली को बुलवाया और उस सुदृढ़ गात्र से संशयपूर्वक पूछा कि यह सचमुच में तुम्हारी ही बालिका है या किसी और की? तुम मुझे स्नेहपूर्वक कहो। तब उस माली ने महीतल के चन्द्र नरेन्द्र को कहा कि मेरी कुसुमदत्ता नाम की गृहिणी ने इसे गंगा की खूब अगाध धारा में एक पिटारी के भीतर रखा पाया था।

7. माली की पुत्री राजकन्या सिद्ध हुई

माली ने उसी क्षण धर्म-भार का पालन करते हुए उस पेटी को लाकर तुरन्त राजा को दिखलाया और कहा—मानवों द्वारा सेवित, हे देव! वह इसी पिटारी में

रखी पायी गयी थी। हे स्वामिसार! हमें ज्ञात नहीं हो सका कि यह बालिका किसकी पुत्री है। तब ज्ञान के सागर तक पहुँचे हुए उस राजा ने उस पिटारी को जोहा (ध्यान से देखा)। उसमें देखा क्या कि स्वर्णमयी अँगुली की मोहर लगी है जिसपर नाम भी लिखा है। उसने उन अति सुन्दर अक्षरों को बाँचा। लिखा था— "यह राजदुहिता है जो कामदेव के गृह के समान सुन्दरी हुई। यह कौशाम्बीके विस्तृत कीर्त्ति, सुप्रसिद्ध राजा वसुपाल की पद्मावती नाम की पुत्री है।" जब राजा ने यह जान लिया कि वह राजपुत्री है, तब उसने अपने दुःख का मंथन करने वाली युवती का अनुराग से तुरन्त परिणय कर लिया।

8. रानी का स्वप्न

राजा ने उस माली को भव्य द्रव्य दिया। अपनी कायकान्ति के अतिरिक्त उस रमणी से संयुक्त होकर अपने को कृतार्थ मानते हुए राजा ने बड़े उत्सव के साथ अपने मन्दिर में प्रवेश किया और वहाँ वे दोनों सुन्दर पति-पत्नी सन्तोष से क्रीड़ा करने लगे। फिर एक दिन रात्रि में सोते हुए उस भामिनी ने स्वप्न में एक सुप्रचण्ड हाथी को देखा जिसके मद झर रहा था और जो अपनी सूँड ऊपर को उठाये हुए था। निद्रा से उठकर रानी ने राजा से कहा—"देखिए, स्वामी, रात्रि में मैंने एक सुन्दर हाथी को आते देखा है।" रानी का वचन सुनकर राजा ने शकुन का विचार किया और उसका फल बतलाया कि हे प्रिये! तेरे एक पुत्र उत्पन्न होगा, जो वंश का मंडन, जनमनरंजक, तथा खलों का हनन करने वाला होगा।

9. रानी की गर्भावस्था

जब पद्मावती अपने प्रियतम के साथ इस प्रकार कह रही थी, तब आनन्द के दिवस व्यतीत होते-होते एक नयी बात हुई। उसके शरीर में अपूर्व छाया उत्पन्न हुई। उसके उज्जवल कपोल पीले पड़ गये। उसके उर में अब वह मोतियों का हार शोभायमान नहीं होता था, क्योंकि पयोधरों के तेजने उसका सौन्दर्य हरण कर लिया था। उस हार ने भी डोल-डोल कर स्तनों के मुखों को काजल के समान काला कर डाला था। खलका भी जब लड़-लड़कर सिर झुका दिया जाता है, तभी

वह गुणीजनों के प्रति मत्सरहीन होता है। रानी के उदर की त्रिवली मानो बालक के भय से लज्जायुक्त होकर नष्ट हो गयी। पेट के बड़े भार से उसकी गति मन्द पड़ गयी तथा आलस, जम्हाई और तन्द्रा की वृद्धि हो गयी। इस प्रकार बालक गर्भ के सारभूत लक्षणों को प्रकट करता हुआ माता के विशाल अंग में रहने लगा, तथा अपने तेज से सूर्य और चन्द्र के तेज को भी फीका करने लगा (इस कडवक की रचना मौक्तिक दाम छन्द में की गयी है)। उस जगप्रधान रानी को ऐसी गर्भ की दशा में देखकर राजा ने सोहला (सौभाग्योत्सव) मनाया। उसी अवसर पर उस शुभ दिन उसके मनमें एक दोहला उत्पन्न हुआ।

10. रानी का दोहला

उस दोहले से उस गजगामिनी मानिनी को बड़ी पीड़ा हुई। वह अब न कुछ बोलती थी और न कोई क्रीड़ा करती थी। बस, उसे एक यही धुन थी कि अपने मन की चिन्तित बातें कैसे पाऊँ? वह क्षण-क्षण महीतल पर स्खलित होती थी। उसे ऐसी दशा में देखकर राजा ने पूछा—"हे प्रिये, तू किस कारण से ऐसी पीड़ित हुई है.? हे सुन्दरी! तेरे शरीर में कौन से दुःख उत्पन्न हुए जिनके कारण तू धीरवती होकर भी अब मेरी बात का उत्तर भी नहीं देती?" तब रानी ने अपना दुख धारण किये हुए देवों को भी सन्तोष कराने वाले अपने पति (श्रेष्ठ पुरुष) को उत्तर दिया—"हे नरपति! जिस कारण से मेरा पुष्ट शरीर इतनी जल्दी ऐसा सूख गया है, उस कारण को कहने से क्या लाभ? हे नरेश्वर! मेरे मन में एक ऐसी चिन्ता (इच्छा) उत्पन्न हुई है जो मनुष्यों को कदापि समप्राप्त नहीं हो सकती। मेघों की मन्द-मन्द वर्षा हो और मैं नररूप धारण करके अपने गजेन्द्र पर आप के सहित, हे राजन्, हे नरेश्वर, चढ़कर फिर गोपुरों सहित पट्टन का भ्रमण करूँ। हे परमेश्वर, यह (अभिलाषा) मेरे हृदय में वर्तमान है। यदि यह घटित न हो सकी तो मैं निश्चय से यों ही मर जाऊँगी।"

11. रानी के दोहलाकी पूर्ति

यह सुनकर राजा हँसते हुए बोला—"हे सुन्दरी! यह तूने अपने हृदय में क्या

उत्पन्न की? मैंने जाना कि तुझे किसी मेरे कारण से दुःख उत्पन्न हुआ है। सुन्दरी! तूने इसको कितनी बड़ी बात समझा? व्यर्थ अपनी देह को मत खपा।" तब वह भामिनी कहने लगी कि इस ग्रीष्मकाल में जब, भयंकर दावानल लग रहे हैं तब, हे स्वामिसार! जलधर कहाँ से आयेगा? हे गुणविशाल! यह होना सम्भव नहीं।" तब राजा ने अपने मनमें इसका विचार कर मेघकुमार देवका चिन्तवन किया। वह देव राजा के चिरकालीन स्नेहवश मेघ का रूप निर्मित कर वहाँ आया। उसने समस्त नभस्तल को आच्छादित कर दिया और वहाँ जल-बिन्दुओं की वर्षा होने लगी। तब सुचित्त हुई महिला से राजा ने कहा—"हे कृशतनु! देखो इस जलधर को; मदन-क्रीड़ा के साधनरूप प्रसाधन लो; और, हे भट्टारिके, अपने मनको सँभालो।"

12. हाथी का मदोन्मत्त होकर भाग उठना

तत्पश्चात् राजा ने एक पुष्ट और दीप्तिवान् हाथी तैयार कराया, बाजे बजवाये, मंगल गीत कराया। वह हाथी मण्डित और सज्जित कराकर रानी को अर्पित किया गया। फिर उस सुन्दर राजा ने रानी को उसके स्कन्ध पर चढ़ाया। उसके साथ राजा ऐसा शोभायमान हुआ जैसे सुरेन्द्र। उसी समय चन्दन-मिश्रित सुगन्धित वायु चलने लगी और मेघजाल मन्द-मन्द जल-बिन्दु बरसाने लगा। तभी उस हाथी को स्मरण आ गया और उसके चित्त में विन्ध्यपर्वत स्फुरायमान हो उठा। तब चित्त में प्रहर्षित होकर वह दुष्ट हाथी भागकर कालिंजर की ओर चल पड़ा। लोग पीछे-पीछे दौड़े, किन्तु वे उसे किसी प्रकार भी नहीं पा सके। वह अपनी पुरी से निकलकर बाहर चला गया।

13. राजा की मुक्ति किन्तु रानी का अपहरण

जब हाथी भागता हुआ वन की ओर जाने लगा, तब रानी बहुत भयभीत हुई। वह अपने पति से बोली—"हे देव, आप उतर जाइए। मेरे लिए मत मरिए। आपके रहते राज्य है, आपके होते धर्मकार्य हैं, आपके होते सभी लोग हैं। आपके होते ही सब जीवों का भोग-विलास है। हे राजन्, पट्टण को लौट जाइए—हाथी मुझे

भले ही ले जाये।'' रानी की बात सुनकर राजा एक वृक्ष की डाल से गया और शीघ्र ही दु:खी मनसे राजधानी को लौट आया। यहाँ वह दुष्ट कूद रानी को लेकर भागता ही गया। जाते-जाते वह हाथी एक सरोवर में प्रविष्ट हु जहाँ कुछ गहरा पानी था वहाँ सुरकामिनी के समान वह रानी चतुराई से जलमें कूद गयी।

14. रानी के पहुँचने से उपवन में आश्चर्य

सरोवर से निकलकर वह महासती अपने मनमें अति दु:ख धारण करती हुई वन में पहुँची। वहाँ उसने देखा कि वृक्ष सब सूखे पड़े हैं और पशु भी कोई नहीं है। अतएव वह उपवन उस मूर्ख के समान था, जो अपना कोई मत नहीं रखता और नीरस हो। वहाँ वह एक वृक्ष के नीचे विश्राम लेने लगी। उसी समय वह नन्दनवन फल-फूल उठा। तब किसी ने जाकर दन्तीपुर में भटमाली के आगे वह विचित्र बात कही—''हे वनपाल, मेरी बात सुनो। आज वन में एक अपूर्व शोभा दिखायी दे रही है। चम्पक, बकुल और आम के वृक्ष प्रफुल्लित हो उठे हैं। समस्त लतामण्डप हरे हो गये हैं। जो अन्य-अन्य समय में फलते हैं, वे तरुवर भी फलों के भार से झुक रहे हैं। सुगन्ध की लोभी भ्रमरावली ऐसी गुंजार कर रही है जैसे मानो वनश्री विशुद्ध स्वर से गा रही हो। क्या मन्मथ उस वन में आ गया है, जो वह मुझे इतना सुन्दर दिखायी दिया?'' यह सुनकर वनपाल तुरन्त ही वहाँ गया, जहाँ उक्त प्रकार मदन का विलास दिखायी दे रहा था। उस वन को ऐसा सुन्दर देखकर माली एक क्षण-भर के लिए हर्ष से तरंगित हो उठा और अपने हृदय में विकल्प किया कि हमारे किसी पवित्र पुण्य से तो यह फला नहीं है।

15. रानी माली के घर जाती है

वनपाल वन में भ्रमण करने और वन की ऋद्धि के कारण की खोज लगाने लगा। उसी समय सुगन्ध मिश्रित पवन आया, मानो वन की ऋद्धि अपना स्वभाव कह रही हो। जिस मार्ग से वह पवन आया था, रक्षपाल उसी ओर गन्ध का अनुसरण करता हुआ चल पड़ा। उसने वृक्ष के नीचे बैठी हुई उस दिव्य बालिका

को देखा, मानो गुणों से भरपूर स्वयं वनश्री विराजमान हो। माली विचार करने लगा, यह कोई साधारण स्त्री तो है नहीं; यह तो रूप में अपूर्व दिव्य देहधारी है। फिर उसने अपनी पुत्री कहकर उसे बुलाया और हाथ धरकर उसको उठाया। वह बोला—"हे पुत्री, दुःखी मन से यहाँ क्यों बैठी हो? ले, मेरे साथ मेरे घर को चल।" उसके ऐसे कर्णमधुर वचन सुनकर वह कामिनी उसके घर को चल पड़ी। जब वह वनमाली के घर में रहने लगी तब माली की स्त्री कुसुमदत्ता ने अपने हृदय में विचार किया—इस असाधारण स्त्री को जो मेरे पति ने देखा है, सो यह कोई किन्नरी है या विद्याधरी, जो यह आँखों को ऐसी प्यारी लगती है; तथा महिलाओं में श्रेष्ठ, चम्पक-गोरी और गुणों से भरपूर दिखायी देती है।

16. रानी का सौन्दर्य व मालिन की रानी से ईर्ष्या

इसके शरीर की रूप-ऋद्धि अत्यधिक भाती है। नखों के रूप में मानो सूर्य और चन्द्र इसका अनुसरण करते हैं। इसके सुन्दर शरीर की इच्छा करती हुई ही कदली इसकी जंघाओं का अनुकरण करने लगी है; और ऐरावत हाथी ने उनके समक्ष अपनी सूंडको भला न जान, मानो मेरु के उच्च शिखर का सेवन किया है। सुरगिरि ने अपने से भी कठिन मानकर इस ललितदेह रमणी के नितम्बका अनुसरण किया है। इसके श्रोणि भाग की मनोहर विशालता का, मानो मदन ने वहाँ ही अपना घर मानकर निर्माण किया है। नाभिकी गहराई तो इतनी है कि जैसे समुद्र ने उसे ही अपनी कन्या (लक्ष्मी) मानकर, उपहार में दी हो। उसके रेखांकित पीन और उन्नत स्तन तो ऐसे हैं जैसे मानो नये घावों से युक्त हाथी के कुम्भ ही हों। करपल्लवों की शोभा से युक्त उसकी भुजा लताओं की सुडौलता का तो मैं क्या वर्णन करूँ? दन्तावलि ऐसी चमकदार शोभा धारण कर रही है, मानो अनार के दानों का ही अनुसरण कर रही हो। नासिका की उन्नतिको सहन न करके ही तो उसके अधर ने वह (क्रोध की) लालिमा धारण की है। उसके श्वेत और कृष्ण नयन तारे तो ऐसे सोहते हैं, जैसे मानो केतकी के पत्रपर दो बड़े-बड़े भौंरे आ बैठे हों। उसकी अतिं कुटिल भौंहों की आवलि ऐसी अच्छी भाती है, जैसे मानो मदन ने अपनी धनुर्यष्टि धारण की हो। भालतल ऐसा महान् शोभा सम्पन्न भाता

है, जैसे मानो अर्धचन्द्र ही वहाँ लगकर शोभा दे रहा हो। भौंरों के समान काले केश सिर पर लहलहाते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे मानो उसके मुखचन्द्र के भय से अन्धकार वहाँ मिलकर काँप रहा हो। यदि इसके मदन स्वरूप सौन्दर्य से मेरा पति विचलित मन हो गया, तो वह निश्चय ही कलह करके मुझे निकाल देगा और इसी को मानने लगेगा।

17. भीषण श्मशान में पुत्र-जन्म

ऐसा विचार कर उस मालिन ने कुछ दोष देकर उसे घर से निकाल दिया। वह घर से मोह छोड़ उसी क्षण वहाँ से चल पड़ी। गर्भ के कारण दुःख से चलते-चलते उसने श्मशान भूमि को देखा। वहाँ चोर और व्यभिचारी शूलों से भिदे हुए थे और उनके मृत शरीर को ढीठ चील-कौए अपनी चोंचों से खण्ड-खण्ड कर रहे थे। वहाँ की भूमि विदीर्ण हुए जीवों के रुधिर से भर रही थी। मांस के लोभी गीध व अन्य प्राणी वहाँ नाच रहे थे। लपलपाती जीभों वाले भालू मृतशरीरों का पेट फाड़ रहे थे। मांस के लोभी राक्षस फे-फे करते हुए वहाँ फिर रहे थे। उड़ते और रेंगते लाखों पक्षियों की वहाँ भीड़ लगी थी। आग की ज्वाला में जलते हुए जीवों से सारी भूमि व्याप्त थी। मृतशरीरों के केश वायु के झोंकों से लहरा रहे थे और स्थान-स्थान पर बँधी झण्डियाँ फहरा रही थीं। जीवों के मृतशरीरों की सड़ी गन्ध से मनुष्यों को वहाँ ज्वर आ जाता था। भग्न हुए खप्परों के वहाँ कहीं-कहीं ढेर लगे थे। इस प्रकार देह के अवसानभूत उस भयंकर श्मशान में पद्मावती ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया, जो कनक व अमर वर्ण, लक्षणों से पूर्ण और जन-मन-आनन्दकारी था।

इति मुनि श्री कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान कल्पतरु फल संपन्न करकरण्ड महाराज चरित्र में करकरण्डजन्मोत्पत्तिवर्णन नामक प्रथम परिच्छेद समाप्त।

संधि—2

जिस शुभ दिन उस बालक का जन्म हुआ, उस दिन वहाँ अनेकों मंगल हुए; मानो सूर्य उदित हुआ हो और दिशाओं के मुख स्पष्ट रूप से निर्मल हो गये हों। पुत्र-जन्म से माता को अपने दुःख का विस्मरण हो गया, मानो उस वन में कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ हो; अथवा पृथ्वी को भेद कर पर्वतराज सुमेरु निकल आया हो, या अपने कुलरूपी नभ में पूर्णचन्द्रमा उदित हुआ हो। जैसे ही वह अपने उत्पन्न हुए पुत्र को लेने लगी, तैसे ही उसने अपने आगे एक मातंग खड़ा देखा। उसका रंग काला और नेत्र लाल थे। वह उस नवजात शिशु के पास आया और उसने अपने हाथ में बालक को ऐसा उठा लिया, जैसे किसी विशाल हाथी ने स्वर्णकलश को उठा लिया हो। उसके हाथ में स्थित वह बालक ऐसी शोभा देता था, जैसे मानो काले नाग के फण पर मणि चमक रही हो। उसे लेकर जब वह अपने घर जाने लगा, तब उसकी माता ने पुकार मचायी—अरे भगोड़े, पापी, तू कहाँ से आया? और मेरे पुत्र को तू क्यों लिये जा रहा है? एक दुःख का तो पार पाया नहीं कि यह दूसरा और बड़ा दुःख आ पड़ा। इसपर उस मातंग रूपधारी विद्याधरने हाथ जोड़ कर पद्मावती से कहा—"हे सुन्दरी बहन, रो मत, मेरी बात सुन।"

2. मातंग का कुल-वर्णन

इसी भारत देश में पर्वतों में प्रधान, प्रसिद्ध और अप्रमाण विजयार्द्ध पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिम सागरों से लगकर ऐसा शोभायमान हो रहा है, जैसे (पृथ्वी को तौलने के लिए) तुलादण्ड ही हो। वहाँ सुरों, किन्नरों और खेचरों का समागम हुआ करता है। उसे अभंगरूप से तार (देवता) ने निर्माण किया है। उसकी दाहिनी श्रेणी पर एक नगरी है, जहाँ पथिक नाना प्रकार के यानों से गमन करते हैं। वह नगरी विद्युत्प्रभा नाम से प्रसिद्ध है, समृद्ध है और अपने उत्तम गुणों के लिए विख्यात है। वहाँ विद्याओं के समूहों से समृद्ध हुआ विद्युत्प्रभ नाम का प्रसिद्ध राजा था। उसकी गृहिणी विद्युल्लता नाम की हुई, जो महेश की देवी गौरी के समान

सुन्दरी थी। उसी से उत्पन्न मैं गुणनिकेत पुत्र हुआ और पृथ्वी पर बालदेव नाम से प्रसिद्ध हुआ। मेरी गृहिणी हुई हेममाला, जो सदैव मुझ में स्नेह से अनुरक्त रहती थी। एक बार उसी के साथ मैं दक्षिण दिशा में रमण करता हुआ आकाशमार्ग से जा रहा था। आन्ध्र और कलिंगदेशों के बीच विन्ध्यपर्वत मेरे आगे खड़ा था।

3. विद्याधर की जैनमुनिराज से भेंट

मैं अपनी गृहिणी के साथ आकाश में जा रहा था और मेरा दिव्य विमान चलता हुआ, मटकता हुआ, घंटियों की ध्वनि करता हुआ, अपने तेज से सूर्य के प्रताप को पराजित कर रहा था। अकस्मात् उस दिव्य विमान का चलना बन्द हो गया। उसे निश्चल खड़ा देख मैंने रोषपूर्वक अपना तीक्ष्ण कृपाण खींच लिया। चारों दिशाओं में देखता हुआ क्षणमात्र स्तब्ध रहा, मेरा सन्तोष नष्ट हो गया और क्षणमात्र में मैं विषादयुक्त हो गया। अधोमुख होकर जब मैं नीचे की ओर देखता हूँ, तो मुझे वहाँ सुव्रत मुनीश्वर दिखायी दिये। उनकी कीर्ति की प्रशंसा लोगों में खूब बढ़ी हुई थी। उनके लोचन नासिका-प्रदेश पर निवेशित थे। उनके हाथी के समान प्रचण्ड बाहु नीचे को लटक रहे थे, मानो उन्होंने दुर्द्धर इन्द्रिय (निग्रहरूप) दण्ड को प्रकट कर रखा हो। वे मेरु के समान अकंप, शुद्ध और ज्ञानी होते हुए, निश्चल, अरूपी ध्यान में निमग्न थे। उन्हें देखकर, हे बहिन, मुझे रोष आ गया और जहाँ वे मुनिराज ध्यान में बैठे थे, वहाँ अपने हाथ में तलवार लेकर क्रोधपूर्वक हनन करने के लिए उठ खड़ा हुआ।

4. मुनि का शाप

'मेरे जाते हुए इन्होंने मेरे कार्य का नाश किया'—ऐसा मनमें विचार कर मैंने उन पर उपसर्ग किया। उन्होंने रुष्ट होकर मुझे शाप दे दिया—'रे भगोड़े, तुझे विद्याओं का लाभ नहीं होगा।' उस शाप से मेरी विद्याएँ एक क्षण में ही चली गयीं। तब, हे बहिन, मैंने अपने मनमें विचारा—'ये मुनिवर कोई सामान्य नहीं हैं। ये जो कुछ कहते हैं, वैसा ही आधे क्षण में हो जाता है।' ऐसा मनमें विचार कर मैं उनके

चरणों में लग गया और बोला—'हे मुनिवर, आपने मेरी विद्याओं का नाश क्यों कर दिया? देवों के देव, मैं तो आपका किंकर हूँ। जन्म-भर भी मैं आप की सेवा को नहीं छोड़ूँगा। हे स्वामिसार, अपने क्रोधानल को शान्त कीजिए और उसे सदा काल मेरे तनरूपी तृणवन में न फैलने दीजिए।' मेरे इस वचन से मुनि उपशम को प्राप्त हो गये, जैसे मन्त्रों के प्रभाव से फणीन्द्र! जब मैंने जान लिया कि मुनिवर अपने मनमें तुष्ट हो गये, तब उनके चरणकमलों को नमस्कार करके मैंने कहा—'हे मुनिवर, करुणापूर्वक मुझे कहिए कि मेरी रमणीक विद्याएँ मुझे कब पुनः प्राप्त होंगी?'

5. शाप का प्रायश्चित्त

मेरी बात सुनकर वे परमज्ञानी मुनीश्वर मेरे सम्मुख इस प्रकार दिव्यवाणी बोले—'हे खेचर, चम्पा के सुन्दर राजा श्रीधाड़ीवाहन की भामिनी पद्मावती को एक दुष्ट हाथी हरण करके ले जायेगा, वह एक माली को मिल जायेगी और वह उसे तुरन्त दन्तीपुर में ले जायेगा। माली की गृहिणी कलह करके उसे निकाल देगी और वह यहाँ (श्मशान में) आवेगी। उसके एक प्रखर तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा और तू गुणनिकेत उसका पालन करेगा। वह उस विशाल पुरी में राज्य प्राप्त करेगा। उस समय तेरी विद्याएँ तुझे पुनः प्राप्त हो जायेंगी।' मुनिकी यही बात मानकर मैंने इस श्मशान का सेवन किया है। सयाना होने तक मैं इसका पालन करूँगा। इसी विचार से मैंने तेरे इस पुत्र को ग्रहण किया है। रोवो मत, अपने हृदय को सम्हालो जो कुछ अन्य भवान्तर में अर्जित किया है, उसी के अनुसार ये दिन तुम्हें अनुभव करने पड़ रहे हैं।'

6. मातंग बालक को अपने घर ले जाता है, और पद्मावती व्रत लेती है

इस प्रकार उस विद्याधर ने अपनी वाणी से जो कुछ कहा, उसका चिन्तन करके, पद्मावती ने दुःखी होकर भी, अपना पुत्र उसे यह कहते हुए अर्पित कर

दिया कि तू निपुण बुद्धि से इसका पालन करना। 'हे बहिन, जैसा तू कहती है, मैं सब वैसा ही करूँगा और उसका ऐसा पालन करूँगा कि वह सर्वांग भव्य बन जाये।' उसे इतना कहकर, विद्याधर उस छोटे से बालक को ले, अपने घर चला गया और उसे अपनी गृहिणी को अर्पित कर वचन बोला—ले हेममाला, यह तेरा पुत्र है। उसने तुरन्त उस बालक को ले लिया और पुत्र कह-कहकर उसका पालन किया। इधर पद्मावती मनमें दुःखी होती हुई, उसी क्षण सन्निकट चली गयी। वहाँ वह सामयिक धर्म में निरत आर्यिका कान्ति के पास रहने लगी और उसी से उसने यम (अणुव्रत) धारण कर लिये। वहीं उसने क्षीणशरीर समाधिगुप्त नाम के प्रवर मुनिवर के दर्शन किये और उन्हीं मुनीन्द्र के पास से उसनें तुरन्त ही दुःखहारीव्रत (अर्जिका) व्रत ले लिया।

7. बालक का नामकरण, मुनिराज-आगमन व आश्चर्यदर्शन

पद्मावती पुत्र के स्नेह से दिन-प्रतिदिन गुड़ व शक्कर के लड्डू लेकर जल्दी-जल्दी उस खेचर के घर पहुँचा आती।* वह खेचर भी उसके पुत्र का इस प्रकार पालन करने लगा कि वह अपने शत्रुओं को जीतनेवाला बने। बालक के हाथ में एक बड़ा खाज का दाग देखकर उसने उसका नाम करकण्ड रखकर प्रकट किया। वह दिनों-दिन बढ़ने और कलाओं का निधान बनने लगा, जैसे मानो चन्द्रमा अपनी स्फुरायमान होती हुई कलाओं से शोभित होता है। उसी अवसर पर वहाँ शास्त्रों के समुद्र, यशोभद्र और वीरभद्र मुनीश्वर आये। वे दुर्द्धर तपके भार से अति क्षीण शरीर थे। उनके साथ उत्तम चतुर्विध संघ भी था। कितने ही साधु ध्यान में संलग्न व ज्ञानवान् थे; एवं कितने ही जल्ल और मल से विलिप्त गात्र थे। वे जब उस भीम श्मशान में आये तब उनमें से किसी एक ने एक चीज़ (अचरज) देखा। एक नर-कपाल के आँखों और मुख से बाँस का विटप निकला था। इसे देखकर उन साधु ने अपने आचार्य से पूछा—हे मुनिराज, इसका कारण बताइए, जिससे मैंने जो पूछा, वह सब ही घटित हो जाये।

*अन्य प्रतियों में यह प्रकरण नहीं है।

8. आश्चर्य का फल

यह वचन सुनकर उन यशोभद्र मुनि ने लघुमुनि को यह बात इस प्रकार बतलायी—'इन तीन बाँसों के ध्वजा, अंकुश और छत्र के प्रचण्ड दण्ड बनने वाले हैं। ये थोड़े बाँस जिसके हाथ चढ़ जायेंगे, वह समस्त पृथ्वी को पावेगा।' यह बात मुनिनाथ के पास बैठे हुए सम्मति नामक द्विज ने सुन ली। सन्ध्या के समय उसने अपने हृदय में मन्त्रणा की कि मुनि का वचन किसी काल में भी चूकता नहीं। तब किसी एक दिन उसने जल्दी से उन तीनों बाँसों को कटवा लिया। किन्तु ज्योंही उन्हें लेकर वह अपने घर जाने लगा, त्योंही करकण्ड उसके पास आ पहुँचा। करकंड ने भट्ट के पास से उन बाँसों को छुड़ा लिया। भट्ट ने भयभीत होकर उन बाँसों को उसे अर्पित करके, अपने सम्मुख उसका तेज सहन न कर, विषादयुक्त होकर पुनः कहा—'हे मित्र, जब तू राज्य प्राप्त कर ले, तब, हे ललितगात्र, मुझे मन्त्री बना लेना।' उस मनोहर भट्ट ने जो कुछ कहा, उस सबको करकंड ने मान लिया और उन बाँसों को लेकर वह अपने घर गया। फिर उसने मधुर स्वर में अपने तात को सब वृत्तान्त सुना दिया।

9. मातंग ने करकण्ड को नाना विद्याएँ सिखलायीं

करकण्ड के ऊपर उस खेचर का बहुत अधिक स्नेह बढ़ा। उसने उसे नीति-सहित व्याकरण, तर्क व सैकड़ों नाटक पढ़ाये। कवियों-द्वारा विरचित बहुरसात्मक काव्य, वात्सायन द्वारा गिनाये गये नौ रस, समस्त मन्त्र और तन्त्र, वशीकरण और सुशोभनीय यन्त्र, असि, चक्र, कुन्त, छुरी, धनुर्वेद, शक्ति, दृढ़तोमर ये सब उत्तम कलाएँ; मल्लों के युद्ध, तनुघट्टान, उल्ललण, वलण और लोटन; फल, फूल व पत्रों का नाना प्रकार से छेदन; ये सब सुखकारी कलाएँ सिखायीं। पटुपटह, मुरज, वीणा आदि व बाँसुरी, ये सभी विद्याएँ भी उसे सिखलायीं। इस भुवनतल पर जो भी प्रसिद्धकला है, विद्याधर ने उसे बड़ी लगन से सिखलाया। सब जन लोभ से विडम्बित होकर कहो कैसे-कैसे आश्चर्य नहीं करता।

10. विद्यावान् की संगति का उपदेश

वह विद्याधर अपने हृदय में करकण्ड से बड़े उपकार की बांछा रखता था। वह करकण्ड को उपदेश देने लगा—'तू विद्यावान् के साथ ही संग कर, उसके घर जाकर नियम से उसका अनुसरण कर।' करकण्ड ने पूछा—'हे तात, विद्यावान से क्या उपकार होता है?' तब वह खेचर बोला—हे सरलचित्त, सुन। कान्यकुब्ज नगर में दो मित्र रहते थे, एक वणिक और दूसरा विप्र। वे दोनों विद्या से सम्पन्न थे। धन कमाने की लालसा से वे चौड़ देश को गये। धन अर्जित कर जब वे घर को लौटने लगे तो आधे मार्ग में वे द्विज की ससुराल की ओर मुड़ गये। वहाँ द्विज के श्वसुर ने उन्हें देखा और वह उन्हें तुरन्त अपने घर ले गया। वहाँ सम्मानित होकर जब वे विश्राम कर रहे थे तब वहाँ बजता हुआ डिंडिम (डौंडी) आया। उस खर और विरस डिंडिम को सुनकर उन्होंने श्वसुर से पूछा—हे मामा, यह कानों को असुहावना डिंडिम जनता में खुलकर किस कार्य से बज रहा है?

11. राक्षस का उपद्रव

श्वसुर ने कहा—यहाँ के राजा की सुन्दर कन्या को एक राक्षस बलपूर्वक ले गया है। उस बेचारी को कोई नहीं छुड़ा पाता। उस राक्षस ने लोगों के समूहों को व राजाओंको जीत डाला है। नदी के उस पार ऊजड़ नगरी में वह राक्षस निवास करता है। उसके भय से कोई श्वास भी नहीं ले पाता। कोई विद्यावान् पुरुष इस नगर में आया दिख जाये इसी कार्य से दिन-प्रतिदिन यह डौंड़ी घुमायी जाती है। श्वसुर का यह वचन सुनकर उन्होंने प्रसन्नमुख होकर उस बजते हुए डिंडिम को रोका। तब उसी क्षण डौंड़ी बजाने वाले ने लौटकर राजा से कहा—"हे देव, यहाँ दो पुरुष आये हैं, मानो निर्मल और प्रशस्त धर्मपुंज ही हों। हे देव, वे कहते हैं और मनमें गर्व रखते हैं कि राजा जो कुछ कहे, हम सब कर सकते हैं।" तब राजा स्वयं जाकर व उन दोनों पुरुषों का सम्मान कर उन्हें अपने घर लिवा लाया और उसी क्षण उस अत्यन्त दुर्द्धर राक्षस के पास भेजा।

12. राक्षस का पराजय और राज-कन्या का उद्धार

वे दोनों उस राक्षस के निवास को गये जिसके पास कोई परिभ्रमण नहीं करता था। वहाँ उन्होंने उस स्थूलपयोधरा, लावण्यतरंगिणी, कनकवर्ण कन्या को देखा। फिर उन्होंने उस कपिलकेश राक्षस को भी देखा। उनके मन्त्रोच्चारण से राक्षस का द्वेष गलित हो गया। वह मन्त्र का तेज सहन न कर बोला—"मैं तो आपका पवनवेग नाम का किंकर हूँ।" जब उन्होंने जाना कि वह राक्षस उन्हें भले प्रकार सिद्ध हो गया, तब वे उस कन्या को लेकर राजा के समक्ष लौटे। राक्षस-सहित और कन्या से युक्त आते हुए उनको लोगों ने देखा और घेर लिया। लोग कहने लगे—"यहाँ आज शान्ति हुई जब इस प्रकार के मन्त्रवेत्ता यहाँ आये।" उन्हें देखकर राजा अपने चित्त में बहुत हर्षित हुआ और उसने उन्हें अति प्रचुर धन दिया। उन्होंने उस कन्या को अपनी बहिन कहकर राजा को समर्पित किया। फिर हस्ती की सूंड के समान पुष्ट और विशाल भुजाओं वाले वे दोनों मित्र आनन्दपूर्वक अपने नगर को चले गये।

13. मूर्ख-संगति का कुफल

जिसने विद्यावान् का संग किया उस मनुष्य को सुख-सम्पत्ति का लाभ होता है। इसलिए विद्यावान् का संग स्वयमेव ऐसा करना चाहिए कि कभी भंग न हो। विद्या-विहीन को कभी अपना मित्र मत बनाना। आपत्ति पड़ने पर वह अपना चित्त विपरीत कर लेता है। करकण्डने पूछा—"विद्या से हीन मनुष्य का आपने कौन-सा दोष देखा?" इसके उत्तर में वह खेचर उसे सन्तोष उत्पन्न करता हुआ बोला—"बनारस नगर के निवासी दो मित्र देशान्तर को गये। वे दोनों ही अज्ञानी थे। धन उपार्जन कर जब वे लौट कर जा रहे थे, तब बीच में ही उन्हें एक राक्षस दिखायी दिया। उसे देखकर वे भयभीत होकर ऐसे भागे, जैसे पापिष्ठ तपश्चरण से भ्रष्ट होकर भाग उठते हैं। वे हृदय से अज्ञानी कुछ नहीं जानते थे। पलायन करते हुए उन्हें उस राक्षस ने पा लिया। तब किसी एक पथिक ने उस निशाचर के साथ खुलकर युद्ध करके उन्हें बन्धन से छुड़ाया। इस प्रकार वे दोनों सहचर परोपकार के द्वारा जीवित रहे।

14. नीच-संगतिकी कहानी

"उसी प्रकार, हे धीर! नीच के साथ संसर्ग यहाँ कभी नहीं करना चाहिए! जिसने नीच के साथ संग किया उसका खेद के साथ सुख भंग हो जाता है। सुन, मैं तुझे एक नीच की कहानी कहता हूँ। इस नीति को, हे सुलक्षण, अपने हृदय से बूझ ले। कोई एक सुदर्शन नाम का वणिक् था। उसे एक नीच राजा ने सहज ही कहा—'यदि तू अपने होठों को बिना मिलाये एक गाथा पढ़ दे तो मैं तुझे अबाध (कर आदि की बाधा से रहित) भूमि दूँगा। 'तब उस वणिक् ने तुरन्त ही ओष्ठ पुट लगाये बिना एक सगुण गाथा पढ़ी। गाथा—'अरिके तेजरूपी ज्वलन की ज्वाला समस्त धरणी रूपी कानन में संज्वलित थी। किन्तु वह आपके खड्ग की धाररूपी जलधारा के जल से सिंच कर नाशको प्राप्त हो गयी।' इसपर उस राजा ने सन्तुष्ट होकर उस सुन्दर वणिक्वर को तुरन्त भूमि प्रदान कर दी। तत्पश्चात् एक दिन उस गुणसागर वणिक्वरने एक दुश्चरित्र स्त्री से प्रेम किया। जब उस कुटिल वणिक् ने चेटी के साथ संसर्ग किया, तब जहाँ उसके सकल मनोरथ उत्पन्न हुए थे, वहाँ उसके उसी समय गर्भ उत्पन्न हो गया।"

15. चेटी का विश्वासघात

तब तुरन्त ही चेटी ने उस वणिक् से कहा—"तू मेरी एक बात अवश्य कर। इस राजा के मयूर का मांस मुझे दे, तब मैं निश्चय से जी सकूँगी।" इसपर वह वणिक्-प्रधान तुरन्त ही गया और उस मयूर को पकड़ने योग्य स्थान पर पहुँचा। उसने उस मयूर को छिपा कर एक दूसरे जीव का बहुत-सा मांस घर जाकर उस चेटी को दे दिया। उसने वणिक्वर को तुरन्त आशीष देकर उस मांस को मयूर कहकर खा लिया। इधर राजा ने नगरी में अपने मयूर को न पाकर डौंड़ी दिलवायी। उसे सुनकर उस चेटी ने राजा को मयूर का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। वह राजा उस वणिक्वर पर रुष्ट हो गया और मारने के लिए उसे तलवारधारियों को सौंप दिया। इंस प्रकार नीच के संग का फल अनुभव करके, भयभीत हुए उस वणिक् ने तुरन्त घर जाकर उस नीच राजा को तत्क्षण् ही मोर अर्पित कर दिया।

16. उच्च पुरुष की कहानी

हे पुत्र, अब एक उच्च पुरुष की कहानी सुन, जिससे विचित्र सम्पत्ति प्राप्त होती है। नीच के संग को अपने हृदय से विचार कर उस वणिक्वरने एक उच्च पुरुष के साथ संग किया। बनारस नगर में एक अरविन्द नाम का मनोभिराम राजा था। वह एक दिन अपने मनमें सन्तोष धारण करता हुआ शिकार के लिए गया। वह एक जलरहित अटवी में जा पड़ा। वहाँ भूख-प्यास से वह बहुत दुःखी हुआ। तब उस वणिक् ने उसे अमृत से बने, सुखकारी, तीन फल दिये। राजा उस वणिक्वर पर सन्तुष्ट हो गया और घर जाकर उसने उसे प्रसाद दिया। उसके महान् उपकार को जानकर राजा ने वणिक् को मन्त्री पद पर बैठाया। वे दोनों अनुरागपूर्वक, तेज में सूर्य और चन्द्र के समान, गुणगणरूपी रत्नों व शील के निधान तथा गम्भीरता में सागर के समान, वहाँ रहने लगे।

17. विलासिनी का सच्चा प्रेम

फिर किसी एक दिन वह मन्त्रिवर उस राजा के पुत्र का हरण करके और उसके आभरणों को लेकर तुरन्त सुखकारी विलासिनी के घर गया और उसे वणिक् ने वे अमूल्य व जन-नयन-प्रिय आभूषण समर्पित कर दिये। फिर उस शरद् के आगमकालवर्ती चन्द्र के समान सुखवाली विलासिनी को उसने कहा—"मैंने राजा के पुत्र को मारा है। "यह सारी बात उसने उस स्थिर प्रेमवाली स्त्री से कही। इसे सुनकर उसने स्नेहपूर्वक कहा—'यह बात किसी पर भी प्रकट मत कीजिए।' यहाँ राजा ने अपने पुत्र को न पाकर नगर में डौंड़ी दिलवायी, "जो कोई राजा के पुत्र का वृत्तान्त कहेगा, वह धन के साथ भूमि भी पायेगा।" इसपर किसी एक ढीठ ने तुरन्त ही राजा के आगे कह दिया—"हे देव, मैंने तुम्हारे पुत्र को देखा है। उसे आपके नये मन्त्री ने मार डाला है।"

18. राजा की कृतज्ञता

यह बात सुनकर वह सरलबाहु राजा मन्त्री पर सन्तुष्ट हुआ और बोला—

"उन तीन फलों में-से एक फल का ऋण मैंने मतिवर मन्त्री का चुका दिया। अन्य दो फलों का ऋण अभी भी शेष है अतः क्षमा कीजिए। इस प्रकार धरणीश उस क्षण प्रसन्न हुआ। मन्त्री ने जब राजा के स्नेह को जान लिया, तब उस दिव्यदेह राजकुमार को लाकर राजा को अर्पित कर दिया। वह बोला—"हे नरेश्वर, आप मेरे परम मित्र हैं। हे देव, मैंने तो आपके चित्त की परीक्षा की थी।" वणिक् का यह वचन सुनकर राजा ने उसे अपना खूब प्रसाद दिया। इस प्रकार जो मनुष्य गौरवशाली पुरुषों का संग करता है, वह मनचाही सम्पत्ति प्राप्त करता है। यह मैंने तुझे एक उच्च पुरुष की कहानी कही। हे पुत्र, इस गुणों की सारभूत कहानी को अपने हृदय में धारण कर ले। करकंड को उस खेचर ने हितबुद्धि से समस्त कलाएँ सिखा दीं। इस नीति से जो मनुष्य व्यवहार करेगा वह निश्चय ही भूमण्डल का उपभोग कर सकता है।

19. दन्तीपुर के राजा की मृत्यु

खेचर के ऐसे वचन सुनकर करकंड कभी उसका साथ नहीं छोड़ता। अपने घर को छोड़कर यदि वह क्रीड़ा के लिए बाहर जाता, तो वह श्मशान को न छोड़ता। इस प्रकार जब वह वहाँ क्रीड़ा में अनुरक्त था, तब दन्तीपुर नगर में एक दिन उस राजा की मृत्यु हो गयी जो अपने विरुद्ध चलने वाले वैरियों का विनाशक और दुःशील राजाओं को भयदायक था, तथा जिसकी आज्ञा का लोग कभी उल्लंघन नहीं करते थे। राजधानी में हाहाकार मच गया। देश-भर में अति दुःख बढ़ा। लोग कहते—"कोई राजकुमार भी तो नहीं है जो यहाँ इतने बड़े राज्य को सँभाले।" तब मन्त्री के मनमें एक मन्त्र (युक्ति) स्फुरायमान हुआ। उसने सुन्दर दाँतों वाले एक श्रेष्ठ गज को देखा (चुना) बुद्धिमान् मन्त्री ने उस हाथी को पूजकर उसे जल से परिपूर्ण घड़ा समर्पित किया और "जो कोई राज्य करने वाला हो, उसके ऊपर इसे ढालेगा"—ऐसा विकल्प अपने मनमें किया।

20. हाथी-द्वारा दैवी विधि से राजा का चुनाव

द्विजेश्वर स्वर से सामवेद पढ़ने लगे। वरण (आह्वान) द्वारा देवगणों को एकत्र

किया गया। शंख, डिंडिम के साथ काहल और तूर्य एवं मार्दल (नगाड़ा) बजने लगा, जिससे मेदिनी पूरित हो गयी। ऐसे अवसर पर वह विशाल हाथी घर से निकला, जैसे प्रेमी अपनी विलासिनी के घर से निकलता है। वह हाथी सूँड़ डुला रहा था और कान चला रहा था। उसकी सुन्दर आँखें चंचल थीं। वह स्वयं उज्जवल वर्ण था। जल से भरे हुए घड़े को वह अपनी सूँड़ में ऐसे लिये हुए था, जैसे मानो पूर्णचन्द्र पर्वत के शिखर पर चल रहा हो। वह उस पुरमें एक घर से दूसरे घरों को पार करता हुआ समग्र उन्नति को धारण किये हुए, चौराहों-सहित समस्त पट्टण का भ्रमण करके बाहर दूर तक भ्रमण करता चला गया। उसने श्मशान के बीच तुरन्त एक कुमार को देखा, जो अपूर्व कामदेव ही था। हाथी ने उसके आगे अपने सिर को नवाकर, वह शोभनीक कुम्भ उसी के सिर पर खाली कर दिया। उसे देखकर लोग सिर धुनने लगे, महान् हाहाकार का रव घोषित हो उठा। अरे, इस करिवर ने यह क्या किया जो मातंग के ऊपर कलश रख (ढाल) दिया।

21. करकंड की राज्यप्राप्ति

इसी असमंजस में पड़कर वे सामन्त और मन्त्री न आगे को चलते और न सामने को देखते। वे जब अपने मनमें इस प्रकार उदास खड़े थे, तब उसी क्षण उस खेचर की, जो मुनि-द्वारा दिये गये शाप से नष्ट हो गयी थीं, वे सब विद्याएँ लौट आयीं। तब उस सुन्दर विद्याधर ने हर्ष से उत्कंठित होते हुए लोगों को बतलाया—"अरे! यह कोई मातंग का पुत्र नहीं है; यह दिव्यदेह राजकुमार है। तुम शंका मत करो। उसे अपने आगे चलने दो और तुम उसके हाथी की सूँड़ के अग्रभाग पर अपना हाथ लगाओ।" ऐसा कहकर, तथा जो विद्या संग्राम में लोगों को स्खलित कर देती है, उसे करकण्ड के हाथ में देकर, यह सब करके, वह खेचर विद्या के बल से नभस्तल-द्वारा अपने भवन को गया। यहाँ गगनतल में जयघोष बढ़ा, देवों ने सुमंगल पूरा किया तथा कनक वा अमरवर्ण के मानवों ने करकण्ड को राज्य पर बैठाया।

इति मुनि श्री कनकामर विरचित, भव्यजनकर्णावतंस, पंचकल्याणविधानरूप कल्पतरु फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्र में, करकण्ड को राज्य लाभ नामक दूसरा परिच्छेद समाप्त।

सन्धि—3

1. गजारूढ़ करकण्ड का नगर-प्रवेश

फिर मन्त्रियों ने नये राजा से कहा—"आप इस गजवर के स्कन्ध पर आरूढ़ हो जाइए। चलिए, चलिए, हे सुन्दर, शीघ्र चलिए; और दन्तीपुर में राज्य के भार को वहन कीजिए।" तब करकण्ड, निर्झर के समान झरते हुए मद से जिसके गण्डस्थल गीले हो रहे थे, ऐसे उस प्रचण्ड हाथी पर चढ़ा। इस समय वह ऐसी मनोहर शोभा को धारण कर रहा था जैसे मानो सुरपति ऐरावत हस्ती पर विराजमान हो। वह उन नरवरों के साथ वहाँ से चला। उसके ऊपर चँवर ढोले जा रहे थे; लीला, विलास व सुख की स्वामिनी उत्तम कामिनियाँ उसके गीत गा रही थीं। कोकिल की ध्वनि को लज्जित करने वाले वन्दीजन उसकी स्तुति कर रहे थे। गुणों के अत्यन्त अनुराग से उसी में अपना मन लगाकर नगर के लोग उसकी सेवा कर रहे थे। तथा परलोक कार्य में सीधी गति से चलने वाले सज्जनमति उसकी श्लाघा कर रहे थे। और भी अन्य लोगों से सम्मानित वह सुन्दर राजा सब जनों के साथ पुरवर में प्रविष्ट हुआ। नगर में प्रवेश करते समय उस गुणों के निलय राजा को पुर की नारियों ने कैसा देखा जैसे तेजनिधि दशरथनन्दन को अयोध्या में सुरनारियों ने देखा था।

2. करकण्ड को देखने के लिए नगर नारियों की विह्वलता

उस समय नगर की उन रमणियों में क्षोभ उत्पन्न हो उठा, जो ध्यानस्थ मुनियों के मनको भी दमन कर लेती थीं। कोई रमणी उत्कण्ठित होकर वेग से चल पड़ी, कोई विह्वल होकर द्वार पर ही खड़ी रह गयी। कोई नये राजा के स्नेह से लुब्ध होकर दौड़ पड़ी। उस मुग्धा को अपने गलित हुए परिधान की भी सुध न रही। कोई अपने अधर में खूब काजल देने लगी और नेत्रों में लाक्षारस करने लगी। कोई

निर्ग्रन्थवृत्ति का अनुसरण कर रही थी, तो कोई अपने बालक को विपरीत (उल्टा) कटि पर ले रही थी। कोई बाला नुपुर को करतल में पहन रही थी और माला को सिर छोड़ कर कटितल पर धारण कर रही थी। कोई बेचारी अनुराग में इतनी डूब गयी कि वह मार्जार (बिलौटे) को अपना पुत्र समझ कर उसे छोड़ती ही नहीं थी। कोई नये राजा को मनमें धारण कर दौड़ रही थी और विह्वल हुई भूमि पर चलती-चलती मूर्च्छित हो रही थी। कोई स्थिर-स्थूल पयोधरी, मृगनयनी, उत्तप्त कनक-छवि और उज्जवल महामानिनी मदन के वश होकर करकण्ड के सम्मुख ही चल पड़ी।

3. करकण्ड का राजकुल-प्रवेश

नये राज्य के लाभ से हृदय में प्रसन्न होते हुए नगर में प्रवेश करते, गज के स्कन्ध पर चढ़ कर जाते हुए लीलासहित नये राजकुल में पहुँच कर करकण्ड ने उस उत्तुंग राजनिकेत को देखा जो हिमवन्त के शिखर के समान अति मनोहर था। वह प्रासाद मुक्ताफलों की माला के तोरणों से मानो अपने सघन श्वेत दाँतों से हँस रहा था। किंकिणियों की ध्वनि-सहित अपनी ध्वजा और पताकाओं की माला-सहित ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई प्रणयिनी ताल दे-देकर नाच रही हो। सुवर्ण और मणिरत्नों से जड़ा हुआ वह प्रसाद ऐसा दिखायी देता था, मानो स्वर्ग से देवों का विमान आ पड़ा हो। उस विमल-बुद्धि नये राजा ने अपने मन को विशुद्धि-सहित गुरुजनों को प्रारम्भ (आगे) करके वहाँ प्रवेश किया। उसी समय तुरन्त कोई एक मानिनी हाथ में सुवर्ण-कलश रूप मंगल करती हुई निकली। उत्तम दीपकों से राजा का सब प्रकार मंगल किया गया और फिर सैकड़ों नारियों ने उसका जयजयकार किया। इस प्रकार सुवर्ण-कलशों से सजाये हुए उस राजमन्दिर में करकण्ड का प्रवेश कराया गया। वह सकलगुण-शीलनिधि, विनयभाव-संयुक्त करकण्ड, सामन्त, मन्त्री व अन्य जनों से परिचारित राज्य करता हुआ उस पुरी में रहने लगा।

4. करकण्ड का प्रेम-जागरण

वहाँ राज्य करते हुए करकण्ड ने शीघ्र ही वे बाँस मँगवाये जो आदेश के अनुसार रखे हुए थे। उनके ध्वज, अंकुश और छत्र के दण्ड बनवाये गये। जो द्विजवर आशा के वश वहीं रह रहा था, उसको बुलाकर मन्त्री बनाया गया। फिर एक दिन जब करकण्ड बड़ी लीला से नगर में भ्रमण कर रहा था, तब उसने एक ललितगात्र मनुष्य को देखा, जो देशान्तर में भ्रमण करता हुआ वहाँ पहुँचा था। फिर हाथ में उन्होंने एक विचित्र पट देखा, जो लोगों के चित्त को मोहित कर रहा था। करकण्ड राजा ने उससे कहा—"जरा पट तो दे, मैं उसे हृदय से देख लूँ।" उसने राजा को वह पट समर्पित किया जिसके अनुराग से लोग आसक्त हो रहे थे। करकण्ड ने उस पचरंगे, गुणगणों से शोभायमान महान् पट को देखा। ज्योंही उसने उसमें उस सुलक्षण रूप को देखा, त्योंही मानो उसके हृदय में मदन का बाण प्रविष्ट हो गया। उसका मुखकमल सूख गया। दीर्घ श्वासें निकलने लगीं, तथा उसे ज्वर एवं अरोचक दाह भी हो उठा। करकण्ड ने उस उत्तम चित्रपट को देखा और वह एक क्षण अपने हृदय में विस्मित होकर रह गया। लोगों के रोमांच ने उसके विरह की बात कही। उस रोमांच से मुकुलित वह नया राजा उदास मन होकर रह गया।

5. मदनावली का जन्म-वृत्तान्त

चित्रपटधारी मनुष्य ने राजा के हृदय को समझ लिया और जान लिया कि बहुत करके यही कन्या का वर होगा। ऐसा समझकर फिर भी उसने कहा—"हे भाई, हे राजन्, पट को मैं लिए जाऊँ।" किन्तु राजा अपने उल्लास में उस पट को छोड़ता ही नहीं था। श्वासें भरता हुआ राजा बोला—"हे मेरे सहचर, ठीक से कहो तो सही कि तुम इस पट को लेकर किस कार्य से घूम रहे हो।" यह सुनकर उसके वचनानुसार राजा से उसने पट का वृत्तान्त कहा—"हे देव, यहाँ सोरठ नाम का देश है जिसने अशेष रूप से सुरलोक का अनुकरण किया है। वहाँ गिरिनगर नाम का नगर है जो सुरों, खेचरों व नरों का नयनाभिराम है। वहाँ अपने शत्रुओं के सिरों का यमराज अजयवर्म नाम का राजा अपनी अजितांगी नामक कान्ता-सहित रहता है। उसकी मनोहर रानी की मदनावली नाम की रूपकरण्डी को कल-स्वरा, लोगों की नयन-पियारी, तेजनिधि, पुत्री हुई।

6. मदनावली का मोह

एक दिन वह मदनावली सखियों के साथ नन्दन वन को गयी। वहाँ उसने देखा कि लोगों के मनों और नयनों को इष्ट खेचर झूलों में चढ़कर मधुर ध्वनि से करकंड की कीर्त्ति के मनोहर गीत गा रहे हैं। उन मनोहर गीतों को सुनकर मदनावली अपने शरीर को धुन कर धरणीतल पर गिर पड़ी। वह ऐसी विह्वल, कलंकहीन व क्षीण देह हो गयी जैसे कृष्ण पक्ष में चन्द्रलेखा। पवन से आहत केली के समान काँपती हुई उसे सखियाँ शोक-सहित घर ले आयीं। जनों के मन के दु:खों को हरण करने वाली उसकी समशीला सहचारियों ने विनय से पूछा—"हे सखी, तू विह्वल क्यों हो गयी? हे प्यारी बहन, हमें कह तो।"तब उस सरल बालिका ने मोहवश अपनी सखियों से अपने विरहानल की बात कही—"जो उन खेचरों ने करकंड-सम्बन्धी गीत गाया, उसे मैंने सुना; उसीसे मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा, और चारों दिशाओं में उत्सुकता लगने लगी।

7. चित्रपट-द्वारा प्रेमी की खोज

हे सखि, मैंने तुझे बात प्रकट कर दी। यदि तुझ से हो सके तो मेरा सन्तोष कर, जबतक कि, हे सखि, विरहाग्नि की ज्वाला से जलते हुए मेरे ये प्राण नष्ट न हो जायें।" तब उस सखी ने दु:ख धारण करते हुए राजा से वह बात संक्षेप में कही कि करकण्ड का गीत सुनने से मदनावली काम से पीड़ित हो उठी है। बालिका-सम्बन्धी इस बात को सुनकर राजा ने हरिणनेत्री का चित्रपट लिखवाया और हे जगभूषण! व कुलरूपी गगन के चन्द्र नरेन्द्र! उस राजा ने वह पट मुझे अर्पित किया। उसी पटको लेकर, दुस्सह शत्रुओं को मोड़ने में समर्थ वीरों के साथ, मैं तुम्हारे इस नगर में आया हूँ। इस पट को देखकर जो कोई मोह को प्राप्त हो, हे नरेश्वर, वही उस कन्या का वर होगा। हे नृप, मैंने तुम्हें यह सब बतला दिया। अब आप भी मेरी इतनी बात मानिए कि वह कमलदलाक्षी शशिवदना आपके करतल को अपने करपल्लव में ग्रहण करे।

8. करकण्ड का मदनावली से विवाह

उस पटधारी मनुष्य का यह वचन सुनकर राजा ने उसकी समस्त बात मान ली। फिर अपने कुलरूपी नभ के चन्द्र राजा करकण्ड ने उस भट के सदृश ही अपने निजी मनुष्य प्रेषित किये। वे मनुष्य एक शुभ दिन सहायकों-सहित मदनावली को लेकर लौट आये। हाट की शोभा की गयी। घर पर तोरण लगाये गये। हाथों में कंकण बाँधे गये। नानाविध वादित्र बजवाये गये। रसीले गीत गाये गये। भावपूर्ण नृत्य नाचे गये। गजों और तुरङ्गों के ठाठ खींचे गये। वधू-वर दोनों का मुखपट उघाड़ा गया, जैसे मानो उनके मनका मोहपटल उघाड़ दिया गया हो। घृत से प्रज्वलित अग्निकी भट्टों ने मन्त्र पढ़कर सात भाँवरें दिलवायीं। नये वर ने अपना कर बालिका को अर्पित किया व दाहिने हाथ से शपथ आदि विधियाँ कीं। तारा-मेल ऐसा सघन हुआ कि जिससे जन्म-भर स्नेह विघटित न हो। प्रशस्त मन तो पहले ही मिल चुका था; यह लोकाचार तो लोगों के मनोरंजनार्थ किया गया। इस प्रकार एक शुद्ध दिन उन अनुरक्त-मन वधू-वर का विवाह सामन्तों-द्वारा करा दिया गया। अपने भोगों के ऊपर उनका मन विरक्त हो गया और मनमें करकण्ड की ऋद्धि की अभिलाषा जाग उठी।

9. माता का आशीर्वाद

उस अवसर पर पद्मावती माता भी अपने पुत्र को देखने के लिए तुरन्त आयी। करकण्ड राजा ने उसके दर्शन किये और नये-नये भाव से उसे प्रणाम किया। अपने पुत्र के विवाह से हर्षित होकर उसने तुरन्त आशीष दी—"हे नन्दन, पृथ्वीनाथ, चिरंजीवी हो, जबतक कि यमुना और गंगा की धारा बह रही है।" करकण्ड ने नमनपूर्वक विनय से यह कहते हुए उसे बैठाया कि मेरा आज का यह दिन सफल हुआ। कोमल वचनों से उसका सम्मान किया गया और उसे उज्जवल किया गया और उसे उज्जवल वस्त्र पहनाये गये। वह आशीष देकर तुरन्त वापिस चली गयी, मानो करकण्ड की कीर्ति विस्फुरायमान हो रही हो। इसी समय लोगों के मन में अनुराग उत्पन्न करता हुआ प्रतिहार करकण्ड के सम्मुख आया। प्रतिहार ने अपने करकमलों को सिर पर रखकर स्पष्ट स्वर में कहा—"हे राजन्, चम्पा के राजा का बड़ा दूत सिंह-द्वार पर खड़ा है।"

10. चम्पाधीश का सन्देश

यह वचन सुनकर करकण्ड ने तुरन्त प्रतिहार से कहा—"जल्दी जा, जहाँ वह सुभट है; और चम्पा के राजा के दूत को यहाँ ले आ।" राजा का वचन सुनकर वह प्रतिहार उसे शीघ्र ले आया। राजा ने दूत को देखकर आसन व दान से उसका सम्मान किया, और पूछा—"हे दूत, जिनकी समस्त मेदिनी संसिद्ध (वशीभूत) हो चुकी है, उन चंपाधीश की कुशल कहो।" दूतने कहा—"हे राजन्, जिसके आप-जैसे सहायक बैठे हों उसकी कुशल ही है। हे देवदेव, निरन्तर अन्य नरेन्द्रों से सेवित होते हुए भी वे तुम्हारा स्मरण किया करते हैं। जिस प्रकार जल से शीतलता भिन्न नहीं है, उसी प्रकार चम्पा-नरेश के लिए पूर्णरूप से आप हैं। हे करकण्ड राजन्, तुम चम्पा के राजा की उत्तम सेवा का पालन करो और आप दोनों जन एक होकर भोगों और धरा का उपभोग करो।"

11. करकण्ड का रोष

"हे मित्र, बिना सेवा के यह मेदिनी एक हस्तमात्र भी भोगने के लिए नहीं मिल सकती। यदि आप चम्पाधिपका सेवा-पालन नहीं करेंगे तो यहाँ से भागकर कहीं अन्यत्र अपना ठाँव कीजिए।" इस वचन को सुनकर करकण्ड ने अपने हृदय में क्रोध धारण कर लाल आँखें कपाल की ओर खींच लीं, जैसे मानो चन्द्र और सूर्य स्वर्ग में स्थित हों। वह बोला—"हे दूत जा, चला जा यहाँ से जहाँ तेरा स्वामी है। तू अब एक क्षण भी यहाँ मत ठहर। संक्षेप से चम्पाधिपको कहना कि मैं तुरन्त ही तुम्हारे पास आता हूँ। यदि समर में शूर-वीरता का अभिमान हो तो जल्दी मुझ से संग्राम करे।" यह वचन सुनकर दूत वहाँ गया, जहाँ श्री धाडीवाहन राजा रहता था। उसने कहा—"हे देव, वह दन्तीपुर का राजा आपको नमन करने के लिए तैयार नहीं है। समरांगण में वह तुम्हारे साथ जूझेगा। वह धीर ऐसा कहता है।"

12. दुर्द्धर सेना चलकर गंगातीर पहुँचती है।

यह वचन सुनकर, तब चम्पाधिराज लगन के साथ युद्ध की तैयारी करने लगा। उसी समय यहाँ दन्तीपुर के राजा ने मन्दर-सहित मेदिनी को कम्पायमान कर दिया। जिसने अपने शत्रुजनों को जीव-रहित करके नाश कर दिया था, उस करकण्ड ने रण-यात्रा के द्वारा दसों दिशाओं में धूल उड़ायी। आकाश आच्छादित हो गया और रवि अपनी चाल से स्खलित हो गया। क्रुद्ध होकर उसने जल्दी-जल्दी प्रयाण किया। चलते-चलते गंगा प्रदेश में आकर उसने गंगा नदी को देखा। वह श्वेत जल-सहित अपनी कुटिल धारा से ऐसी शोभायमान थी जैसे मानो श्वेत भुजङ्ग की महिला जा रही हो। दूर से ही बहती हुई वह ऐसी दिखायी दी, जैसे वह हिमवन्त गिरीन्द्र की कीर्ति ही हो। दोनों कूलों पर नहाते हुए व आदित्य को जल चढ़ाते हुए दर्भ से युक्त ऊँचे उठाये हुए करतलों सहित लोगों के द्वारा, मानो इन्हीं वहानों से, नदी कह रही थी कि 'मैं शुद्ध हूँ, और अपने मार्ग से जाती हूँ; हे स्वामी, हमारे ऊपर रुष्ट मत होइए।' नदी को देखकर करकण्ड राजा अपने पिता के नगर गुणगणों के धाम चम्पापुर को गया। जिसने बड़े-बड़े देवों और खेचरों को समर में धनुष से छोड़े हुए बाणों-द्वारा भय उत्पन्न किया था, उसने चम्पापट्टण को चारों दिशाओं में दुर्द्धर गज, तुरङ्ग और नरेन्द्रों की सेनाओं से घेर लिया।

13. आक्रमणकारी सैन्य का समाचार

जब उस राजा ने नगर को घेर लिया, तब एक क्षण में पुरजन आकुल हो उठे। किसी एक ने, जिसने समस्त शत्रु की सेना को घेरा डालते देख लिया था, जाकर राजा से कहा—"हे नरपति, शत्रु के सैन्यवन के दावानल, बन्दीजनों और सज्जनों के आशा-पूरक, उधर उद्दण्ड सूँड़ों वाले गज गुड़गुड़ा रहे हैं। टेढ़ी घींचें किये बड़े-बड़े घोड़े हिनहिना रहे हैं। बड़े-बड़े रथ घर्राते हुए व स्फुरायमान ध्वजाओं से फहराते हुए चल रहे हैं। तलवारों की किरणें सूर्य की रश्मियों को भी जीत रही हैं। बाँकुड़े कुन्तल थर्रा रहे हैं। छुरियों-सहित भाले खूब चमचमा रहे हैं। योद्धा पवन के समान वेग से सञ्चार कर रहे हैं। इस प्रकार वैरी का सिंह के समान दुर्द्धर, अति प्रचण्ड सैन्य आपके ऊपर चढ़ आया है। यह सुनकर राजा

का मुखकमल रक्तोत्पल के सदृश लाल हो उठा। उन्होंने अपने होंठ चबाये; आँखों पर भौंहें चढ़ गयीं, क्रोधानल भभक उठा और हर्ष चला गया।

14. चम्पा की सेना भी तैयार हुई

तब वह चम्पा का राजा उठ खड़ा हुआ। दौड़ने लगे वे किंकर जो समर में देवों को भी भयङ्कर थे। वायुवेग घोड़े और कुञ्जर सज गये। बड़े-बड़े रथ चक्कों की चीत्कार करते हुए चल पड़े। हाँकें, डँकारें और हूँकार छोड़ते हुए कितने ही योद्धा भाले ग्रहण करके दौड़ पड़े। कितने ही अपने स्वामी के सम्मान को मानते थे, और राजा के चरण-कमलों के भक्त थे। वे प्रशस्त, रण में दुर्द्धर नर प्रसन्नचित होकर हाथों में धनुष लिये दौड़े। कितने ही कोपसे काँपते हुए और कितने ही उघाड़े हुए खड्गों से दीप्तिमान् होते हुए दौड़े। कितने ही रोमाञ्चरूप कञ्चुक से संयुक्त थे, और कितने ही अपने गात्र पर सन्नाह बाँधकर तैयार थे। कितने ही संग्राम-भूमि के रसमें रक्त होकर स्वर्ग पाने के इच्छित मार्ग से आ पहुँचे। (इस कडवक की रचना सर्गिणी छन्द में हुई है।) चम्पाधिप उत्तम घोड़ों, हाथियों और रथों से युक्त होकर पुरवर से निकल पड़ा। उद्दण्ड, चण्ड, स्थूल भुजाशाली, कहो, किन-किन ने अनुसरण नहीं किया?

15. भीषण संग्राम

तब नगाड़ों पर चोट पड़ी जिससे भुवन-तल पूरित हो गया। बाजे बज रहे हैं और सैन्य सज रहे हैं। आज्ञानुसार व्यूह-घटित होकर वे सेनाएँ शत्रु-बल से भिड़ गयीं। भाले भग्न हो रहे हैं, कुञ्जर गरज रहे हैं, योद्धा वेग से बढ़ रहे हैं, हाथी के दाँतों से लगरहे हैं। गात्र टूट रहे हैं, मूड़ें फूट रही हैं। रुण्ड दौड़ रहे हैं और शत्रु स्थान को पा रहे हैं। आँतें निकल रही हैं, रुधिर से सन रही हैं। हड्डियाँ टूट रही हैं, ग्रीवाएँ मुड़ रही हैं। जो कोई नर कायर थे, वे भाग उठे, कोई भिड़ गये। भट खड्ग तानकर और कोई रणमांड कर डट गये।

16. करकण्ड और चम्पाधिप का युद्ध

तब रोष से चम्पाधिप नरेन्द्र रथ पर चढ़कर दौड़ा, जैसे सुरेन्द्र। वह तुरन्त परसैन्य के नृप के समीप गया और करकण्ड राजा से भिड़ गया। तब दोनों बलों में कलकल बढ़ गया। नभस्तल बाणावलिसे आच्छादित हो गया। तब क्रोधानल युक्त होकर, ऐरावत की सूँड़ के समान दीर्घ भुजशाली करकण्ड ने तुरन्त चम्पा-नराधिप पर शक्ति के साथ अपनी शक्ति छोड़ी। उसने एक क्षण में चिह्न ध्वज-सहित रथ को छिन्न कर डाला, और फिर तुरन्त ही सारथी को धराशायी किया। तब शीघ्र ही चम्पाधिप ने जल्दी-जल्दी वाण प्रेषित किये। जब चम्पाधिपने वाण छोड़े, तब एक क्षण में करकण्ड का सैन्य भाग उठा। करकण्ड ने जब अपने बल को चलायमान देखा तब उसके मनमें महान् रोष विस्फुरित हुआ, और जो विद्या उसे खेचर ने दी उसे तुरन्त प्रेषण (भेज) दिया।

17. करकण्ड की खेचरी विद्या का प्रभाव

तब उस दुर्द्धर राजा करकण्ड ने मात्सर्य से विद्या छोड़ी। वह ढीठ विद्या एक क्षण में तुरन्त दौड़ती हुई दिखायी दी। वह विद्या फे करती, हूँ करती, वायुवेग से सञ्चार करती एवं राक्षसी के समान व्यापार करती तथा चमकती हुई आकाश में मिल जाती। हाथियों के कुम्भस्थलों का निर्दलन करती। एक रथ से दूसरे रथ को टकराकर चूर्ण करती। संग्राम में जिनकी ओर उसने देखा वे उसके दर्शनमात्र से नष्ट हुए। कोई मूर्च्छा से मोहित हो गये। कितने ही योधा जूझ गये। कोई घात से खण्डित हो गये और कितने ही जीवन से छूट गये। तब चम्पा नरेश ने कुपित होकर तुरन्त ही खड्गलता हाथ में धारण की और जो विद्या सैकड़ों नरों को निगल रही थी, उसकी बल-शक्ति को क्षणार्द्ध में हर लिया।

18. करकण्ड की भीषण धनुष-टंकार

करकण्ड ने देखा कि उसकी विद्या चली गयी। तब उसने रोष धारण करके, अपने हाथ में धनुष लिया और उसकी चाप पर प्रत्यञ्चा चढ़ायी। इसे देख लोग

खिन्न हो उठे। उसी समय गगन में गुणसेवी देव क्षोभ को प्राप्त हुए। धनुष के घोर व रुद्र टङ्कार शब्द से धरणीतल तड़तड़ाया। उसके नीचे का कूर्म कड़कड़ाया, भुवनतल खलभलाया। प्रवर गिरि टलटलाया। सागर झलझलाया और धरणीन्द्र सलबलाया। खगनाथ खिसक गया और सुरराज थर्रा उठा। धनुष की प्रत्यञ्चा के उस शब्द को सुनकर रथ (के घोड़े) भाग उठे, गजप्रवर नष्ट हुए, चम्प-नराधिपका मद गलित हुआ तथा भयभीत खेचर निश्चल हो गये।

19. समराङ्गण में पद्मावती माता

तुरन्त ही सुर लोगों का हृदय भिन्न हो गया और शत्रुबल भयभीत होकर सन्न रह गया। उसी क्षण करकण्ड ने बैशाख स्थान साधा (शरसन्धान मुद्रा धारण की) जिससे तुरन्त ही चम्पा नरेन्द्र का मान भङ्ग हो गया। उसी समय क्षणार्द्ध में चाप को सजाया और पसीने के जल से प्रत्यञ्चा को माँजा। करकण्ड ने ज्योंही इधर प्रचण्ड बाण को प्रत्यञ्चा पर किया, तभी उधर चम्पाधिप ने दूसरा बाण छोड़ा। ज्योंही वह बाण निरर्थक हुआ, त्योंही समर में पद्मावती आ पहुँची। करकण्ड नरेश्वर ने उसे देखा और दूर से ही सिर नवाकर प्रणाम किया। वह बोला—"हे माता, माता, इस असाध्य संग्राम में, भटसमूह के मध्य, तू क्यों आई?" वह बोली—"हे पुत्र, चाप रोको; यह धाडीवाहन तुम्हारा पिता है।" करकण्डने पूछा—"हे महासती माता, कहो तो, यह गुणनिलय नृप मेरा पिता कैसे होता है?" तब उसने तुरन्त उससे कहा—"हे महावली धरणीपति पुत्र, सुनो"

20. पद्मावती ने पिता-पुत्र की पहचान करायी

मैं चम्पापुरी के राजा के घर में उनकी रमणी थी। समस्त देश के लोगों का मन मुझ से प्रसन्न था। ज्योंही तू गर्भ में आया, त्योंही मुझे एक दुःख उत्पन्न हुआ। मुझे एक बड़ा दुर्द्धर हाथी हरकर दन्तीपुर के बाहर ले गया। वहाँ भीम श्मशान में तू उत्पन्न हुआ। तुझे देखकर मुझे सुख हुआ। करकण्ड नरेश्वर उस वचन को सुनकर एक क्षण के लिए मन में विस्मित होकर रह गया। उधर पद्मावती अपने

पुत्र से उक्त प्रकार कहकर, भय छोड़, तुरन्त अपने कान्त के पास गयी। उसे चम्पा नरेश ने देखा, जैसे रत्नाकर गङ्गानदी को देखे। यह जानकर भी कि पद्मावती है, उसने उसे स्वभावतः नमन किया। वह जो गौरवशाली व्रतों का भार धारण किये हुए थी, इससे राजा ने अपनी कान्ता की स्तुति की। फिर चम्पनराधिपने उससे पूछा कि तू उस गजवर से छूटी कैसे? तब उसने तुरन्त कहा—"हे राजन्, गज से मुझे सरोवर के तटपर मुक्ति मिली।"

21. पिता-पुत्र सम्मेलन

"उसीके पास श्मशान में मुझे प्रसूति हुई और वह कुलमण्डन नन्दन उत्पन्न हुआ। किसी एक खेचरने उसे पाला। मैंने वहीं हृदय के भार से व्रत ले लिया। फिर दन्तीपुर के राजा की मृत्यु हुई और मेरे उसी पुत्र को नगर का राजा बनाया गया। जान लीजिए, वही पुत्र इस प्रकार तुम से आ भिड़ा है। तुम क्रोधरूपी पिशाच से विडम्बित हुए हो। मूढ़ मत होइए। इस आग्रह को छोड़िए। हे नृप, यह तेरा ही प्रभावशाली पुत्र है।" उस वचन को सुनकर चम्पाधिप तत्क्षण हृदय से सन्तुष्ट हुआ और बोला—"मैं धन्य हूँ जिसका ऐसा पुत्र हो, जो दृढ़ भुजाशाली और संग्राम में धीर हो। उस प्रवर राजा ने अपने धनुष को छोड़ा, बाण को नीचे गिरा दिया और करकण्ड के पास गया वहाँ जाकर धाडीवाहन ने उसी क्षण अपने पुत्र का आलिङ्गन किया, जिस प्रकार कि संग्राम में जाकर दामोदर ने तेजनिधि प्रद्युम्नकुमार का आलिंगन किया था।

22. करकण्ड चम्पा में सिंहासनारूढ़

करकण्ड ने अपने पिता से कहा—"आपके साथ मैंने रण किया, इसे हे देव, मेरा (अपराध) मत ग्रहण कीजिए। उस मेरे समस्त अपराध को, हे भट्टारक, क्षमा कीजिए।" इस वचन को सुनकर वह चम्पाधिप तत्क्षण हृदय में उल्लसित हो उठा। वह उसे लेकर अन्य राजाओं सहित नगर को गया और नाना उत्सवों से उसका प्रवेश कराया। करकण्ड के द्वारा वह नगरी ऐसी शोभायमान हुई कि अमरपुरी भी

उससे लज्जित हो गयी। लोग रत्न लेकर अनुराग-सहित राज महल में बधाई के लिए आये। फिर दुर्द्धर राजाओं को पीसने के लिए घरट्ट के समान राजपट्ट करकण्ड को बाँधा गया, और राजा ने उसी क्षण अपने शरीर को तपश्रीरूपी भूषण से मण्डित किया। राजा अष्टकर्म रूपी ग्रन्थिका नाश करने में समर्थ, काम-विनाशक सुदुर्द्धर तपश्चरण करके, शरीर को छोड़कर, हृदय की गाँठ को खण्डित कर, शिवरूपी वधू के कण्ठ से जा लगे। गुणों के घर धाड़ीवाहन कनक व अमरवर्ण शिवनिलय को गये, और यहाँ नगरी में मानिनियों के हृदयहारी करकण्ड चम्पापुरी में राज्य करते हुए रहने लगे।

इति मुनि श्री कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान कल्पतरू फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्र में करकण्ड का चम्पापुरी-प्रवेश नामक तृतीय परिच्छेद समाप्त।

सन्धि—4

1. करकण्ड की द्रविड़ देश को जीतने की प्रतिज्ञा

करकण्ड ने समस्त पृथ्वी को वशीभूत करके विमलमति मन्त्रिवर से पूछा, "हे सन्मति मन्त्रिवर, कहो, क्या कोई आज भी ऐसा दुष्ट मनुष्य है जो मुझे नमन न करता हो?" तब उस मन्त्रिवर ने कहा—"हे देवदेव, आपकी समस्त ही महीतल सेवा करता है। परन्तु द्रविड़ देश में ऐसे ढीठ नृप हैं जो किसी को नमन नहीं करते। वे हृदय से बड़े दुष्ट हैं। श्री चोड, पाण्ड्य और चेर नाम के राजा, हे देव, आपकी सेवा नहीं करते।" यह सुनकर चम्पाधिपने उनके पास उसी क्षण एक दूत को प्रेषित किया। उसने जाकर उन चोड आदि राजाओं से कहा कि आप करकण्ड के चरणों को नमन कीजिए। किन्तु उन्होंने उस दूत को बहुत डाँटा-फटकारा और कहा—"जिनेन्द्र को छोड़कर हम अन्य किसी को नमन नहीं करते।" उस दूतने आकर करकण्ड से कहा—"वे आपकी सेवा नहीं करेंगे, बहुत कहने से क्या?" इस वचन को सुनकर करकण्ड राजा ने प्रतिज्ञा की कि 'यदि मैं उन राजाओं के सिर पर अपना पाँव न दूँ, तो महीतल, पुत्र, इन्द्रियसुखों एवं परिग्रहों से मेरी निवृत्ति है' (अर्थात् मैं इन सबका त्याग कर दूँगा)। यह प्रतिज्ञा करके करकण्डने क्रुद्ध होकर शीघ्र प्रयाण कर दिया। चम्पाधिप उस देश पर चढ़ाई करने चल पड़ा। वह एक हाथी पर चढ़कर राजधानी से निकला। अपनी चतुरङ्गिणी सेना से संयुक्त होकर वह सुरेश्वर की शोभा को धारण करने लगा।

2. करकण्ड का चतुरङ्गिणी सेनासहित प्रयाण

करकण्ड की यात्रा से पृथ्वी घोड़ों के खुरों से भिद गयी और धूमवर्ण रज गगनाङ्गण में उड़ने लगी। उस धूलिने दिशाओं में प्रसार कर मानो दिग्गजों के मुखों पर पट डाल दिया। मही हिल पड़ी, बड़े-बड़े पर्वत चलायमान हो गये और सुरेन्द्र आकाश में कम्पित हुए भागे। दक्षिणापथ पर चलते हुए करकण्ड तेरापुर में पहुँचा। वहाँ नगर की दक्षिण दिशा में महावन के बीच चतुरङ्गिणी सेना का डेरा डाला

गया। क्षणमात्र में वहाँ के सिंहों और पुलिन्दों की भगदड़ मच गयी। पचरङ्गे तम्बू ठोंक दिये गये, मानो देवों के विमान भूमि पर उतर आये हों। महावत हाथियों को लेकर जलाशय को गये, और गधे प्रहृष्ट होकर गधियों की ओर दौड़े। राजपुरुषों ने ध्वजाएँ फहरा दीं, मानो मही ऊँचे हाथ करके नाचने लगी हो। इस प्रकार जब करकण्ड नरेश अपनी विशाल सेनासहित वहाँ डेरा डाले बैठे थे, तब उनके सम्मुख प्रतीहार आया और दूर से ही उसने विशुद्ध भाव से नमन किया।

3. तेरापुर के राजा की भेंट

प्रतीहार बोला—"हे देव! तेरापुर में एक राजा है जो शिव नाम से भूमण्डल में प्रसिद्ध है। वह आपके दर्शन के लिए यहाँ आया है; वह क्या आवे या लौटकर चला जाये?" करकण्ड ने उसका वचन सुनकर प्रतिहारी से कहा—"तेराधीश को क्षणार्द्ध में प्रवेश दे। तू स्वयं जाकर उन्हें लेकर आ।" प्रतीहार उस राजा को ले आया और करकण्ड ने उसका सम्मान किया। शिष्टाचार करने के पश्चात् फिर उसने पूछा—"हे नरेश्वर, आपकी सदाकाल कुशल तो है?" उसने उत्तर दिया—"हे नरेश्वर, मेरी कुशल ही है, जो मैं आपके करुणारूपी जल से सींचा गया।" उसके वचन से करकण्ड राजा का उसके ऊपर स्नेह बढ़ गया। उन्होंने उसपर अपनी खूब प्रसन्नता दिखायी और दान से व वचनों से उसे सानुराग किया। फिर करकण्ड ने शिव राजा से पूछा—"हे मेरे भाई, प्रतीतिपूर्वक कहो तो, क्या तुमने वनमें भ्रमण करते हुए कोई आश्चर्य देखा है?"

4. तेराधीश-द्वारा पर्वत पर सहस्त्रस्तम्भ गुफा व पूज्य वामी का समाचार

उस वचन को सुनकर तेराधिप शिव ने फिर करकण्ड से कहा—"हे देव, यहाँ से पश्चिम दिशा में अति निकट एक रम्य पर्वत है। वहाँ एक नयनाकर्षक लयण (गुफामन्दिर) है, जो सहस्त्रों स्तम्भों के आधार से बनी है। उस लयण के ऊपर पर्वत पर, सिर पर मुकुट के चूड़ामणि के समान एक बड़ी सुन्दर वामी है,

जिसका प्रमाण किसी ने भी नहीं जाना। वहाँ जल और कमल लेकर एक श्वेतवर्ण का हाथी आकर उसकी पूजा करता है। इस प्रकार वह हाथी बहुत काल से रह रहा है। हे स्वामिसार, मैंने तुम्हें यह बात कह दी।" इसे सुनकर करकण्ड राजा शिव के साथ उस पर्वत के सम्मुख गया। महीरूपी महिला के स्तन के समान मनोहर जो देवों का एक बड़ा क्रीड़ागृह था, उस पर्वत को करकण्ड ने उसी क्षण देखा, जैसे भरतेश्वर ने कैलाश पर्वत के दर्शन किये थे।

5. भीषण वन तथा लयण का वर्णन

जहाँ हाथियों के कुम्भस्थलों को विदीर्ण कर सिंह घूमते हैं और अपने चरणों में-से मुक्ताफल बिखराते हैं। कहीं सिंह दहाड़ते हुए सोहते हैं, जिससे वहाँ हाथी मदजल नहीं झराते। जहाँ निरन्तर सारंग चरते हैं व कहीं बन्दर बुप्-बुप् कर रहे हैं। कहीं विकराल दाढ़ोंवाले कोल (वराह) केहरी के सम्मुख ढोक देते हुए परिभ्रमण कर रहे हैं। वहाँ थोड़े ऊपर चढ़ने पर करकण्ड ने उस लयण को देखा, जैसे देवेन्द्र देव विमान को देखें। करकण्ड नराधिपने वहाँ प्रवेश किया। धन्य है वह सुलक्षण, दम्भरहित भव्यपुरुष जिसने उस सहस्त्र स्तम्भ लयंण को बनवाया। फिर उसने वीतराग जिनेन्द्र देव के दर्शन किये और भक्ति सहित स्तवन करने लगा—"जय, चतुर्गतिनाशक, मलहरण; जय मानगिरीन्द्र के विदारक व्रज्र; हे निरञ्जन, अज्ञानरूपी तिमिर के परिहारक रवि; हे देव, तू ही मेरे लिए शरण है।"

6. सरोवर में हाथी कमल लेने आया

जिनेश्वर की वन्दना करके और पर्वत के ऊपर शीघ्र चढ़कर उन दोनों राजाओं ने चारों दिशाओं का अवलोकन किया जिससे उन राजाओं के मनमें सुख हुआ। जब वे वनमें देखते हुए खड़े थे, तब उसी क्षण वह सुन्दर हाथी वहाँ आया। सरोवर में-से कमल लेने के लिए जाता हुआ वह करीन्द्र ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मानो एक पर्वत समुद्र के पास आया हो। वह कानों से झलझल स्वर उत्पन्न कर रहा था और कपोलों से मद वह रहा था। उसके लोचन खूब लाल वर्ण थे। दाँतों से

वह प्रशंसनीय था, तथा उसकी रीढ़ चढ़ाये हुए चाप के समान उठी हुई थी। वह भौंरों के पुञ्जों को दूर हटाता जाता था और सूँड के जल से दिशामुखों को भर रहा था। वह सूँड़ से सैकड़ों कमलों को तोड़ रहा था और सिर पर मोतियों की माला धारण किये था (यहाँ मौक्तक दाम छन्द का प्रयोग है)। उस हाथी ने कमलों को लेकर तथा अपनी सूँड को जल से भरकर तुरन्त आकर वामी की प्रदक्षिणा दी, जल सींचा और पूजा की। वह हाथी ऐसा भव्य था।

7. सरोवर-द्वारा राजा का स्वागत

भक्तिसहित वामी की पूजा करके हाथी चला गया। तब करकण्ड राजा उस सरोवर के पास गया। उसे आते देख वह सरोवर मानो उसे विश्वास दिलाने के लिए पक्षियों के कोलाहल द्वारा कह रहा था—'आइए।' वह जल हस्तियों-द्वारा कलश धारण किये था और तृष्णातुर जीवों को सुख उत्पन्न करता था। वह उच्च-दण्ड कमलों के द्वारा उन्नति वहन कर रहा था और उछलती मछलियों-द्वारा अपना उछलता मन प्रकट कर रहा था। फेन पिण्डरूपी दाँतों को प्रकट करता हुआ वह हँस रहा था, एवं अति निर्मल व प्रचुर गुणों-सहित चल रहा था। फूले हुए कमलों-द्वारा वह अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहा था और विविध विहंगों के रूप में नाच रहा था। भ्रमरावली की गुंजार-द्वारा वह गा रहा था और पवन से प्रेरित जल के द्वारा दौड़ रहा था। इस प्रकार एक सुहावने व नयन-इष्ट सज्जन के समान उस जल से भरे हुए सरोवर को उन्होंने देखा। जल लेकर दोनों राजाओं ने अपने पैर धोये और मुख का प्रक्षालन किया। तत्पश्चात् उन्होंने उस वामी को देखा, जिसकी हाथी ने कमलों से पूजा की थी।

8. वामी का खनन

करकण्ड ने मनमें विचारा—यह मनोज्ञ वामी निश्चय ही वन्दनीय है। यहाँ कोई महान् देव रहता है। इसीलिए वह हाथी इतने वेग से जाकर व पूजा करके गया है। चूँकि वह हाथी प्रसन्न होकर वामी की पूजा करता है, इसी धर्म से मानो

वह श्वेत वर्ण हो गया है। इस प्रकार मनमें चिन्तन करके करकण्ड राजा उस दिन भक्तिसहित उपवास करके रहे। दूसरे दिन करकण्ड ने क्षणमांत्र में उस वामी को खुदवाया। लोगों ने क्षणमात्र में ही उसे समतल कर दिया, जैसे मानो पाप का पटल नाश को प्राप्त किया गया हो। जब थोड़ा और गहरा खोदा गया तब मणिकिरणों की दीप्ति निकल पड़ी। वह दीप्ति इतनी निर्मल और तेज थी कि चारों दिशाओं में घूमकर आकाश में जा मिली, मानो करकण्ड की उत्तम कीर्ति अमरेश्वर को देखने चली हो।

9. वामी से जिन-बिम्ब निकला

अब वे आवेग से जल्दी-जल्दी खोदने लगे, तब वहाँ एक जिनबिम्ब निकला। मणिरत्न निर्मित फणावलीयुक्त सर्प उसपर छत्र के समान शोभायमान था। दुन्दुभि, भामण्डल और दो चमर ये भी श्रवण और नयनों को सुख उत्पन्न कर रहे थे। सिंहासन बहुत से रत्नों से जड़ा हुआ था, मानो सुरेन्द्र ने उसे अपने हाथों गढ़ा हो। जब उस बिम्ब को निकालकर बाहर किया, तब वह ऐसा भाया, जैसे मानो मही को भेदकर धर्म का पिण्ड ही निकल पड़ा हो। तब देवों ने आकाश में दुन्दुभी बजायी और गगन से घनी पुष्पवृष्टि हुई। समस्त दिशाओं के मुख अति निर्मल हो गये और सुगन्धयुक्त वायु चलने लगी। इस प्रकार उस गुणरत्नों के निधान पार्थिव के सब मनोरथ पूरे हुए। अनुराग से उसका शरीर रोमांचित और मुखकमल सन्तोष से प्रफुल्लित हो गया। उसने सरोवर से जल लेकर जिन भगवान् को स्नान कराया और मल-रहित हुए बिम्ब की बहुत से कमलों से पूजा की।

10. जिनेन्द्र की स्तुति

फिर उस नृपवर ने उत्तम भक्ति के भार से सिर झुकाकर स्तुति प्रारम्भ की— जय हो भगवान् आपकी, जिनके चरण देवों के मुकुट-मणियों से घर्षित होते हैं और जो संसार-नगर के पालन करने वाले उत्तम राजा है; जो कर्मरूपी वृक्ष को काटने वाले कुठार हैं और चतुर्गतिरूप सागर के परमतारक हैं। जय हो आपकी,

जो पापान्धकार को नाश करने वाले दिनेश हैं। हे भगवन्, आपने मदरूपी घटों को पूर्णरूप से जीत लिया है; आप रागरूपी भुजङ्ग को दमन करने के लिए मन्त्र तथा मदनरूपी इक्षु को पेरने के लिए उत्तम यन्त्र हैं। आप केवलज्ञान की किरणों से स्फुरायमान हैं तथा आपने कर्म के प्रवाह को अवरुद्ध कर डाला है। जय हो, भगवान् आपकी, जो जयश्री रूपी वधू के कर्णावतंस एवं भव्यजनों के मनरूपी सरोवर के राजहंस हैं। जय हो, नित्य निरञ्जन, इन्द्रियविजयी, जय हो आपकी, जो शिवगतिरूपी महिला के वदन में लीन हैं। जय-जय, देव जिनेन्द्र प्रभु, आपका ध्यान अपने मन में तो मैंने प्रतिदिन किया, किन्तु आज इस क्षण आपके दर्शनों से मेरे नेत्र भी सन्तुष्ट हो गये।

11. करकण्ड जिनबिम्ब को लयण में ले आये

उस राजा ने जिनबिम्ब को उठाया, जैसे लंकेश्वर ने कैलाश को उठाया था। दोनों हाथों से सिर के ऊपर रखा हुआ वह बिम्ब ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मानो हरिने गोवर्द्धन को उठा लिया हो। उस अवसर पर देवों ने पुष्प-वृष्टि की, जिससे राजा के मन में सन्तोष हुआ। किन्हीं देवों ने छत्र धारण किया और किन्हीं ने केशर से गात्र का लेप किया। किन्हीं ने चमचमाते चमर चलाये और किन्हीं ने जोर से दुन्दुभी बजायी। कोई अनुराग से ताण्डव नृत्य करने लगे और कोई दूर से ही जिनेन्द्र के चरणों को नमन करने लगे। जिस प्रकार देव अभिषेक करके मन्दराग जिनेश्वर को मन्दरपर्वत से घर वापस लाये थे, उसी प्रकार करकण्ड राजा उन गुणनिकेत देव को लयण में ले गये। राजा ने जिन भगवान् को लयण में प्रतिष्ठित कर दिया और फिर उनकी पूजा करके व चन्दन से अर्चना करके अपने मन में अनुराग धारण करते हुए पहली बार प्रतिमा का अवलोकन किया।

12. सिंहासन पर गाँठ दिखायी दी

तब उस समय राजा की दृष्टि जिनप्रतिमा पर गयी और उन्हें सिंहासन के ऊपर एक गाँठ दिखायी दी, जैसे मानो स्फटिक शिला पर हरा मणि चमक रहा हो, अथवा जैसे चंन्द्रमा पर हरिण लगा हो। उस गाँठ को देखकर राजा ने सोचा

कि इस गाँठ से जिनबिम्ब की शोभा नष्ट होती है। उन्होंने एक सूत्रधार को बुलवाया, जो सब प्रकार के निर्माण कार्य में कुशल था। उन्होंने उससे अति प्रिय वचन बोलकर पूछा—"हे परममित्र! तुम समस्त उत्तम कर्मशास्त्र (वास्तुकला) को भले प्रकार जानते हो, अतएव कहो तो कि जिनप्रतिमा (के सिंहासन) पर यह गाँठ क्यों दिखायी देती है?" यह सुनकर वह निष्पाप सूत्रधार, जिसने अनेक प्रतिमागत रूपों का निर्माण किया था, बोला—"हे देव, आपने जो मनोहर बात पूछी है, उसे मैं बताता हूँ, जिससे आपका दुःख दूर हो। हे नृपति, जब यह जिनप्रतिमा गढ़ी गयी थी, तभी यहाँ एक जलवाहिनी निकल पड़ी थी। उसी कारण से (जलवाहिनी को रोकने के लिए) यह गाँठ धर दी गयी है," ऐसा मैंने परम्परा से देखा-सुना है।

13. राजा का जलवाहिनी-दर्शन के लिए कुतूहल

तब नरेश्वर बोला—"हे परममित्र, वह विचित्र जलवाहिनी मुझे कैसे दिखायी दे?" यह सुनकर सूत्रधार बोला—"हे ललित-देह देव, यदि किसी प्रकार वह जलवाहिनी निकल पड़ी, तो वह जनपद में बहुत से भीषण रोग उत्पन्न करेगी, जो उसका जल पीयेंगे वे चिरकाल के लिए अस्वस्थ हो जावेंगे। यह समझ कर यह जो बहुत दुःखों की परम्परा से भरी है उसे प्रकट कराने से क्या लाभ?" यह सुनकर राजा ने कहा—"हे मित्र, मैं जल को रुकवा दूँगा और लयण को भी चिनवा दूँगा; किन्तु यह कौतूहल तो तू मुझे दिखला ही दे।" यह सुनकर सूत्रधार पुनः बोला—"हे देव, यदि मैं इस गाँठ को फोड़ दूँ तो जल भर आने पर मैं तुरन्त निकलूँगा कैसे?" इस वचन को सुनकर राजा ने उसी क्षण एक दुर्दुर (टीला) बनवाया। फिर उस लयण को टेढ़े-मेढ़े बहुत प्रकार के पत्थरों से निपुणतापूर्वक चिनवा कर वह राजा और शिलापति ये दोनों जन जिनप्रतिमा के सम्मुख गये।

14. जलवाहिनी निकल पड़ी

जिस गाँठ को राजा ने अशोभनीय गिना था, उसे शिलापति (शिल्पी) ने टाँकी से ठोका। भारी चोटें पड़ने से चिनगारियाँ निकलने लगीं, मानो शेषनाग के क्रोधवश

जल उठने के चिह्न हों। फिर उस गाँठ के मुख से शीघ्र ही एक बड़ी भारी जल की धारा निकल पड़ी। पहले भुक-भुक करती हुई निकली, मानो मेदिनी भय से वमन करने लगी हो। बाहर निकलती हुई वह जलधारा ऐसी प्रतीत हुई जैसे मानो पृथ्वी को भेद कर नागेन्द्र की गृहिणी निकल पड़ी हो। भूमि में मिलकर वह ऐसी शोभायमान हुई, जैसे मानो गंगा नदी खल-खला रही हो। उसने प्रसार करते हुए एक क्षण में उस समस्त लयण को जल से भर दिया, जैसे मानो वह बहुत रसों के जल से भरा अमृतकुण्ड हो; अथवा जैसे जल के बहाने से धर्मसार भरा हो; अथवा जैसे मानो उस गिरि ने अपना मन प्रकट किया हो कि मैं ऐसा हृदयहारी सज्जन हूँ; अथवा जैसे उसने सन्तुष्ट होकर राजा को संक्षेप में अमृत का घर प्रदान किया हो।

15. राजा का पश्चात्ताप

उसे देखकर वे राजा और सूत्रधार दोनों मनमें भयभीत हुए और दुःखपूर्वक वहाँ से निकले। राजा दर्दुर के ऊपर चढ़ गया और चिन्ता से फीका मुख और हतोत्साहित हो ठहरा। जैसे वज्र के प्रहार से महीधरेन्द्र, या जैसे सैन्य भग्न हो जाने से सुरेन्द्र, अथवा जैसे केशरी के नखों से विदीर्ण हुआ हाथी; वैसे ही वह नरपति वहाँ दुःख से खिन्न हुआ ठहरा। वह काँपता, डोलता व सलबलाता था और लगातार दुःख से अपने हाथ मलता था। सिरकमल धुनता, दीर्घ ध्वनि करता और गद्गद स्वर से पुनः-पुनः कहता—हाय, आज मुझ दुष्ट खल ने यह क्या किया? हाय, इसके फल से मुझे पाप लगेगा। हाय, मैं किस कर्म से प्रेरित हो गया। राजा हाथ पर मुँह रखकर बैठा रहा और कहने लगा—"जो देवसमूहों-द्वारा वंदित, पूज्य-महिम व धर्म का निलय था, उस जगतिलक देव को मैंने कहाँ लाकर छोड़ा?"

16. देव का आगमन व राजा को आश्वासन

इस प्रकार शोक से विह्वल, विषादयुक्त हुआ राजा जब वहाँ बैठा था, तभी कोई एक पुण्यवान देव आकाश से वहाँ आ उतरा। वह गुणों का निवास और दुःखों

का विनाश था, एवं विराग का हन्ता और सराग का जनक भी था। किरीट से युक्त, जिनेन्द्र में दत्त-चित्त, महा दीप्तिवान्, नभ में भ्रमणशील, सुरूपधारी, गिरीन्द्र का अनुसरण करता हुआ, धरदेवी का सार, भुजङ्गकुमार, झुककर नमनशील और विशुद्ध वाक्शील तथा सम्पूर्ण रूप से सुन्दर गात्र वह देव वहाँ आकर पहुँचा। राजा ने उसे देखा और मनमें प्रसन्न हुआ। वह देव नृप को आनन्दकारी और जनों को भी आनन्दकारी था। वह बोला—"हे नराधिप, दुःख का त्याग कर। किन्तु शोकवश अपने इस आग्रह को मत छोड़। मैंने अपने मन में जो कुछ सोचा था, उसे तूने किया और वही आगे करेगा भी बहुत।"

11. देव का आत्म-परिचय

हे नरपति! मैं यहाँ चिरकाल से रहता हूँ और इस जलवाहिनी को रोकने में समर्थ हूँ। यदि मैं रुष्ट हो जाऊँ तो ग्रहों के समूह को भी नीचे गिरा दूँ, धरणीतल में शेषनाग के फण को भी तोड़ डालूँ, विस्फुरायमान भूधरों को चूर-चूर कर दूँ, व संग्राम में बढ़ते हुए देवों को भी प्रति स्खलित कर दूँ। मेरे भय से सुर भी सञ्चार नहीं कर सकता; दूसरे वैरी मनुष्य की तो बात ही क्या? पर मैं तो यहाँ इस प्रतिमा का रक्षपाल होकर रहा हूँ। आगे भारी दुष्काल आने वाला है। हे सरल चित्त, मैंने चिरकाल से तेरी प्रतीक्षा की है, और हे मित्र, तू मेरे देखते यहाँ आ गया। हे भद्र, मैंने इतने काल तक इस प्रतिमा की रक्षा की, जिससे वह साठ हजार वर्षों तक अक्षत रही। हे सुन्दर, तूने यह सुन्दर काम किया जो परमदेव को जल-लयण में निवेशित कर दिया। रत्नमय जिनेन्द्र को लाकर इस समुज्ज्वल कनकवर्ण अमर-लयण में रखा, यह काम तूने कर दिया। हे राजन्, अब मैं मुक्त हुआ, स्वयं महीमण्डल में लीलापूर्वक भ्रमण करूँगा।

इति मुनि श्री कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान कल्पतरु-फलसम्पन्न करकण्डमहाराज चरित्र में करकण्ड का जिनप्रतिमादर्शन नामक चतुर्थ परिच्छेद समाप्त हुआ।

सन्धि—5

1. विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी

करकण्ड ने उस देव से पूछा—"कहिए, इस लयण को किसने बनवाया है, तथा जिस प्रतिमा ने मेरे मन को इतना अनुरक्त किया है उस उत्तम रत्नमयी प्रतिमा को किसने निर्मित कराया?" यह सुनकर वायुवेग नाम के नागकुमार देव से जो कुछ राजा ने पूछा वह तत्क्षण कहा—"इस जूम्बद्वीप के भरतक्षेत्र में शोभायमान व अप्रमाण विजयार्द्ध पर्वत है। वहाँ खेचर रमण करते हैं, एवं कुञ्जरों की गर्जना सुनायी देती है। उसके दो ऊँचे अग्र (पार्श्व) भाग हैं जो समुद्र से जाकर लगे हैं। उस पर्वत की परिधि पच्चीस के दुगुने (अर्थात् पचास) योजन है, और उसकी ऊँचाई पच्चीस योजन है। उसकी दस योजन की ऊँचाई पर वह उत्तम दक्षिण श्रेणी है जो विद्याधरों से सेवित है, एवं जिसे देखकर देव भी उसकी अभिलाषा करने लगते हैं।"

2. नील और महानील विद्याधरों का तेरानगर में आगमन

वहाँ खेचरों से भरा हुआ रथनूपुरचक्रवाल नाम का नगर है। वहाँ नील और महानील नाम के दो विद्याधर भ्राता रहते थे। जब वे वहाँ राज्य करते हुए रह रहे थे, तब उन दोनों पर वैरियों ने दबाव डाला। उन्होंने दोनों की विद्याओं को उड़ा दिया और उन्हें पट्टण से बाहर निकाल फेंका। यह श्रीपार्श्व जिनेन्द्र के काल की बात है जब सुरों, खेचरों व किन्नरों के कोलाहल की खूब धूम थी। वे दोनों भाई बड़े उदास, दुःखधारण करते हुए, पृथ्वी को लाँधकर तेरानगर में आये। वहाँ रहकर उन्होंने भव्य राज्य किया और समस्त पृथ्वीतल को अपने वशीभूत किया। एक दिन उन्होंने मुनिवर के पास श्री पार्श्व जिनेन्द्र की पापनाशिनी कथा सुनी। उस मनोहर, दुःखनाशक कथा को सुनकर वे परितोष से रोमांचित हो उठे, तथा निश्चल होकर धर्म व दयासहित भक्तिपूर्वक एकाग्र मन से जिनेन्द्र का ध्यान करने लगे।

3. विद्याधर भ्राताओं-द्वारा जैनधर्म ग्रहण

फिर उन खेचर भ्राताओं ने अनुराग से यह लयण बनवाया। उसका निर्माण सहस्त्रों स्तम्भों सहित किया गया और उसका भीतरी भाग सुन्दर कराया गया। उन्होंने मणिनिर्मित जिन प्रतिमाओं के लिए भी यह स्थान मणि-रत्नों से बनवाया। निरन्तर स्नान-पूजा करते व जिनेन्द्र का अनुसरण करते हुए वे खेचर भ्राता बहुत काल तक रहे। यहाँ दिनोंदिन खेचरों की मनोहर व नानाविध महिमा बढ़ी। यह पर्वत खेचरों से वेष्टित हो गया, जैसे मेरु महागिरि सुरवरों से। उस शोभा को देखकर समस्त सुरगणेन्द्र यहाँ विस्मित मन होकर रह जाते थे। उस अवसर पर, हे सरलचित्त! नील के परम मित्र आये। उस विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर दिशा में गगनतल नाम का प्रिय नगर है, जो सुरों, किन्नरों व खेचरों का वल्लभ है, जैसे मानो देवनगर ही आकर ठहर गया हो।

4. अमितवेग और सुवेग विद्याधरों का सिरिपूदीपर्वत पर चतुर्विंशति जिनालय का दर्शन

उस गगनतल नामक नगर में दो खगपति भ्राता रहते थे। उनका परस्पर घनिष्ठ प्रेम था। चन्द्र के समान कमनीय तथा दिवाकर के समान प्रवर तेजस्वी उन भाइयों के नाम थे अमितवेग और सुवेग। वे सुविशुद्ध शील, समर में अभंग तथा सम्यक्त्वरूपी रत्न से परिभूषितांग थे। वे महान् खेचर पर्व के दिनों में एक दिन वन्दना करने के लिए चल पड़े। दक्षिण दिशा में लंका को जाते हुए मलय प्रदेश में उन्होंने उस सिरीपूदी नाम के गिरिवरेन्द्र को देखा, जहाँ सुरेन्द्र भी क्रीड़ार्थ आता था। क्षणार्द्ध में वे उस पर्वत के ऊपर उतर पड़े, मानो स्वर्ग से सुरपति उतरे हों। वहाँ उन्होंने सुधा पंक से धवल (चूने से पुता हुआ स्वच्छ) गगनचुम्बी चतुर्विंशति जिनालय देखा। उसे देख हर्ष से वे वहाँ (जिन बिम्बों के समीप) गये, जिन्होंने दूर से ही मदन का निवारण किया था।

5. रावण-वंशी राजा सूरप्रभ-द्वारा उस जैनमन्दिर का निर्माण

रावण के वंश में एक सूरप्रभ नाम से प्रसिद्ध लंका का राजा हुआ। उसकी प्रिय गृहिणी का नाम श्रीसेना था। एक दिन वह रमण करने के लिए निकल कर मलय प्रदेश में जाते हुए व अति रमणीक भूमि देखते हुए पूदीपर्वत पर आ पहुँचा। और जिस प्रकार भरतेश्वर ने भक्तिभाव से कैलाश पर्वत पर चौबीस प्रतिमाएँ करायी थीं, उसी प्रकार उस लंकानाथ ने शुभ भाव से पूदी मन्दर पर जिनवरों का वह चतुर्विंशति जिनालय निर्माण कराया था। वे जिन प्रतिमाएँ मणिरत्नों से विनिर्मित, निर्मल तथा ध्यान करने वालों के मनमें मलों का नाश करने वाली थीं। उस जिनालय की देव सदाकाल वन्दना व आदर से पूजा व ध्यान करने लगे। वे जिन बिम्ब दर्शन करने वालों के नेत्रों को सुख उत्पन्न करते, ध्यान करने वालों के पापरूपी मल का नाश करते, एवं एक क्षण में (जन्ममरणरूप) संसार का नाश करते थे। उनके दर्शकगण जो चिन्तन करते वह सकल वस्तु पा जाते थे।

6. विद्याधरों-द्वारा जिनेन्द्र की स्तुति

(उन अमितवेग और सुवेग नामक खेचर भाइयों ने। उसी लंकानाथ-द्वारा निर्मापित चतुर्विंशति जिनालय में) उन जिनेश्वर के बिम्बों को देखा, जिन्होंने मिथ्यात्वरूपी महातम का निवारण किया था। वे शरीर से, वचन से तथा शुद्ध मनसे उन अनिंद्य सुदेव जिनेन्द्र की स्तुति करने लगे। जगत-त्रय में उतनी वाणी नहीं है, जितनी से केवलज्ञानी की भले प्रकार स्तुति की जा सके। त्रिलोक के स्वरूप का प्रमाण जानने वाले किन्तु स्वयं अमेय और अमान, हे जगन्नाथ, आपको हमारा नमन है। हे मन्मथ को जीतने वाले महाप्रभु देव, आपको नमस्कार है। नमस्कार है हे भगवन्त, अरूप, अलेप। नमस्कार है, हे वीतराग, मदरूपी शत्रु के विनाशक। नमस्कार है नरदेव, जिन्होंने (सांसारिक) सुखों की आशा छोड़ दी है। हे इन्द्रियहीन, व शिव में विलीन, नमस्कार है आपको। मार को जीतने वाले और विकारों को विलीन करने वाले, नमस्कार है आपको। अपने शुक्ल ध्यान द्वारा क्षणमात्र में कर्मों का घात करने वाले, नमस्कार है आपको। आपके चरणों को मैं मनसे नमस्कार

करता हूँ। हे केवलज्ञानरूपी रवि के द्वारा मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का पूर्ण रूप से नाश करने वाले जिनेन्द्र, जय हो आपकी। इस प्रकार वन्दना, पूजा व स्तवन करके वे खेचर उन प्रतिमाओं को एक-एक करके देखने लगे।

7. पार्श्व की प्रतिमा को लेकर उनका तेरापुर आना

उन सुन्दर प्रतिमाओं को देख-देखकर निरन्तर उनके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। फिर वे कहने लगे कि देवों के क्रीड़ास्थान को प्राप्त विजयार्द्ध पर्वत पर इन प्रतिमाओं के ही समान हम भी भक्तिपूर्वक जिन बिम्ब बनवायेंगे। ऐसा मनमें विचार कर उन्होंने अति भक्तिभार से अपने दोनों हाथों-द्वारा जिनेन्द्र पार्श्वनाथ की नाना रत्नों से जड़ी प्रतिमा ग्रहण की और उसे उठाकर वे वहाँ से चल पड़े। वह सुनिर्मल प्रतिमा गगनतल में ऐसी स्फुरायमान हुई, जैसे चन्द्रमा की चाँदनी फैल रही हो, अथवा जैसे विद्युत् लपलपाती हुई शोभायमान हो। उसे लेकर वे उत्तर दिशा में चले, मानो (दक्षिण दिशावर्ती) यमको छोड़कर जा रहे हों। वे परिनिविड गात्र (सबल शरीर) जिन भगवान् में अनुरक्त दोनों सहोदर यहाँ पहुँचे। यहाँ वे गुणों के घर (दोनों भ्राता) उस रत्नों से निर्मित प्रतिमा को पर्वत के ऊपर छोड़कर उस लयण के सम्मुख गये जिसने भव (संसार) के भय की प्रतिमा को दूर कर दिया था।

8. पार्श्व-प्रतिमा पर्वत पर अचल हो गयी

वहाँ (उस गुफा में) वे दोनों भ्राता वन्दन-भक्ति करके लौटकर अपनी उसी प्रतिमा के सम्मुख आये। वहाँ जाकर जब वे उस प्रतिमा को पुनः लेने लगे, तब वह अपने स्थान से चलायमान ही न हुई, मानो किसी खेचर ने उसे स्तम्भित कर दिया हो, अथवा मानो उस रम्य स्थान को देखकर वह स्वयं अपने ही भार से स्थिर हो गयी हो। उसे निश्चल देखकर वे दोनों भाई अपने मनमें तत्क्षण दुःख से बहुत पीड़ित हुए। परलोक कार्य में परम उत्सुक होकर, हाय, हम दुष्टों ने यह क्या किया? हमने जो जिनेन्द्र की प्रतिमा को उसके स्थान से चलायमान किया, यही

हमारे नरक में पड़ने का कारण होगा। दो स्थानों में-से एक भी स्थान न रहा। इस प्रकार उन्हें केवल (शुद्ध) प्रचुर ज्ञान बढ़ा। तब उन्होंने भयभीत होकर एक मंजूषा बनायी और उसे खोदकर भूमि में रख दिया। उसे झाँपकर वे परिक्षीण शरीर हो तुरन्त सहस्रकूट भवन को गये और उसकी वन्दना करके, वहाँ मनको जीतकर ध्यान में स्थित यशोधर मुनि को उन्होंने देखा।

9. मुनिराज-द्वारा भविष्यवाणी और विद्याधरों की जिन-दीक्षा

उस यति की वन्दना करके उन्होंने पूछा—"हे मुनिवर, शुद्धमति, सुनिए। हमने भ्रमण करते हुए नाना प्रकार की महिमा से युक्त एक जिन प्रतिमा प्राप्त की। उसको लेकर अपने पुर को जाते हुए हमनें उसे इस गिरिराज के शिखर पर रख दी। किन्तु जब लयण में उत्तम वन्दना करके उसे तुरन्त लेने के लिए लौटे, तब वह स्थान से चलती ही नहीं। हम क्या करें? हे स्वामी, हम जियेंगे कि मरेंगे?" यह सुनकर मुनिप्रवर ने उनसे कहा—"यहाँ एक बड़ा तीर्थ बनेगा और तुम्हारा यह भाई अन्य भव में यहाँ बहु गुणयुक्त सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। यह सुनकर क्षणार्द्ध में उन दोनों भाइयों ने भक्ति-सहित तप धारण कर लिया। अमितवेग विद्याधर तप करके व अपने मनोहर शरीर को छोड़कर शीघ्र ही स्वर्ग गया और वहाँ सुन्दर देव हुआ।

10. लघु भ्राता-द्वारा व्रत का दम्भ व उस पाप से हाथी का जन्म

यहाँ उसका लघु भ्राता लोगों में पूज्य और उसने बहुत जल्दी में गुरु के पास बारह वर्षों के लिए प्रसिद्ध एकान्तर भोजन का व्रत धारण कर दिया। किन्तु एक दिन वह बाईस परीषहों से पीड़ित होकर सलबला उठा। क्षुधा व तृष्णा से पीड़ित होकर उसने क्या किया कि दूसरे ग्राम में गमन करने का सोचा। वहाँ जाकर उसने भोजन किया व जल पिया, तथा जनपद में प्रकट किया कि (पूर्वदिन) मैंने अनशन

किया। दूसरे दिन पुन: अन्य ग्राम में लोगों में प्रकट उपवास घोषित किया कि मैंने कल उपवास किया था। इसी विधि से वह बहुत दिन करता रहा और सब लोगों को अपनी उक्ति से वंचित करता रहा। इस प्रकार सुवेग ने माया से तप किया। अत: वह मरकर वनमें हाथी हुआ। जो कोई वक-वेष से अपने शरीर को खींचकर तप धारण कर दम्भ से धर्म का आचरण करता है, यह नीरस बकवाद करता हुआ भगोड़ा व मूढ़-मन बड़े दु:ख पाता है।

11. अमितवेग देव-द्वारा हाथी को उपदेश

तब जो अतिमवेग देव हुआ था उसने स्वर्ग में स्थित होते हुए हृदय में चिन्ता की कि मेरा लघु भाई कहाँ उत्पन्न हुआ होगा। फिर अवधिज्ञान से उसने उसे जान लिया। उसके प्रति करुण होकर वह वेग से चल पड़ा और एक क्षण में वह उस वनमें आ पहुँचा जहाँ वह हाथी रहता था। उसने मुनिका वेष बनाकर उस हाथी का अनुसरण किया, और फिर वह अतिमधुर वचन द्वारा हाथी से बोला—"हे सुवेग, सुन, तूने नाना प्रकार दु:ख पाया। तूने मिथ्यात्वमूलक मायाचार से तप किया। उसी बलवान् पाप से तू हाथी हुआ है। उसका यह वचन सुनकर हाथी ने मुनि के चरणों का अनुसरण किया। वह सिरकी ओर आँखें चढ़ाकर पूर्वजन्म का स्मरण करने लगा। वह दु:ख से बोल उठा और जोर की चीत्कार करने लगा। तब उस देव ने हाथी के हृदय को जान लिया। वह फिर सुकोमल वचन बोला कि तू अब सम्यक्त्वरूपी रत्न को मत छोड़ना। उसी से तुझे सुनिर्मल ज्ञान प्राप्त होगा।

12. पूजा के प्रभाव से हाथी मरकर स्वर्ग गया

फिर उसने उसे जनसुखकारी, अणुव्रत गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत प्रदान किये एवं सदा काल के लिए बहुत गुणयुक्त निशिभोजन-त्याग व पञ्च उदुम्बर-त्याग के व्रत भी दिये। उसने अपने पूर्व जन्म को जानकर भय से काँपते हुए करिवर को पूजा का फल भी कह सुनाया। फिर उसने उस मनोहर प्रतिमा की बात कही जो उन्होंने उस वामी में बहुत पहले रखी थी। इस प्रकार जो कुछ उस सुरवर ने प्रकाशित

किया उस समस्त बात को करिवर ने ग्रहण कर लिया। पूर्वोक्त प्रकार कहकर वह सुर अपने घर चला गया, और वह हाथी यहीं वन में रहने लगा। तत्पश्चात् अन्य दिन जब वह जल और कमल लिये हुए फिर लौटकर वामी पर आया तब उसे वहाँ वीतराग जिनेन्द्र दिखायी नहीं दिये। तब उस करिवर ने जल और कमलों को वहीं डाल दिया तथा सम्यक्त्व को लेकर उसे दृढ़ करके व संन्यास करके वह खेचर (का जीव हाथी) शुभ भाव से जिनेन्द्रदेव की भावना करके तीसरे स्वर्ग में देव हुआ।

13. करकण्ड-द्वारा दो और लयनों का निर्माण

हे नरपति! जो कुछ तूने पूछा वह समस्त बात मैंने तुझे कह दी। तूने मेरे मनकी सुन्दर बात की, जो नरेश्वर, तूने लयण को चिनवाया। इसलिए अब तू इतना और स्वीकार कर कि लयण के ऊपर एक दूसरा लयण बनवा दे। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक राजा को कह कर वह सुरवर लीला से अपने घर चला गया। करकण्ड ने लयण के ऊपर जिनेन्द्र का सुन्दर भवनरूप लयण बनवाया तथा उसके भी ऊपर एक अति मनोहर मदनापहारी छोटा-सा लयण और बनवाया। उन तीनों लयणों की शोभा कैसी हुई, जैसे मानो वे सुरनाथ के घरों का अनुहरण कर रहे हों। वह राजा धरणीनाथ उन जिनमदिरों को बनवाकर और उन मनोहर मन्दिरों की स्वयं पूजा-अर्चा करके अपने हृदय में बहुत सन्तोष धारण करता हुआ अपने डेरे पर आया। जब वह शत्रु-विनाशक करकण्ड नरेश्वर वहाँ अपने आवास में था, तब एक स्थिर व स्थूल सूँड़वाला महान् मदोन्मत्त हाथी सरोवर में जल पीने आया।

14. करकण्ड की सेना पर मदोन्मत्त हाथी का आक्रमण

जब वह हाथी सरोवर के तीर पर खड़ा था, तब उसे सेना की गन्ध मिली। तब अपनी सूँड़ को उठाकर व सिर हिलाकर हाथी ने मुख मोड़कर उस ओर अवलोकन किया। उस सेना को देखकर वह करिवर विरुद्ध हो गया (भड़क उठा)

और मद की गंध का लोभी वह हाथी सूँड़ को दाँत पर रखकर गुलगुलाता हुआ, पैरों के भार से पृथ्वी को रौंदता हुआ दौड़ पड़ा। उसे देखकर लोगों ने हाथी को रोकने में पूर्णरूप से अपने चित्त को लगाया। वे उठकर तुरन्त हाथी से जा लगे (भिड़े)। किन्तु हाथी के आघात के भय से वे सब भाग गये। तब स्वयं नरपति हाथ में कृपाण लेकर दौड़ा और उसने युद्ध करके हाथी को रोक दिया। किन्तु करण (अर्थात् पैंतरा) देकर जब वह चोट करने लगा तभी वह हाथी अदृष्ट हो गया। करिवर के अदृष्ट हो जाने पर वह राजा तत्क्षण आँखों से अकचका गया। देखते-देखते हाथी लुप्त हो गया। इसपर नरपति अपने मनमें विस्मित होकर खड़ा रहा।

15. मदनावली का अपहरण व करकण्ड का विलाप

जब राजा अपने डेरे पर आया, तब उसे वहाँ मदनावली दिखायी नहीं दी। वह हृदयहीन होकर चारों दिशाओं में देखने लगा और काँपता हुआ हीनभाव से पृथ्वी पर भ्रमाण करने लगा। राजा शंकित हो उठा और उसका गर्व गलित हो गया। कहाँ गयी—मेरी सर्वांग-भव्य पत्नी? जो मदनावली मेरी आनन्दभूत थी, वह इस प्रकार विपरीत क्यों हो गयी? फिर राजा ने अच्छे-अच्छे किंकरों को प्रेषित किया और कहा—प्रत्येक दिशा के मार्ग से अपनी स्वामिनी को देखो तो। सब दिशाओं में देखकर वे लौट आये और ऊँचे हाथ करके पुकार मचाने लगे। तब राजा ने उन्हें रोते देखकर अपनी आँखों से भी तुरन्त आँसू बहाये (वह विलाप करने लगा) हे पादप! जिस प्रकार प्रजापति सज्जनों का बन्धु है, उसी प्रकार तू शकुनों (पक्षियों) का बड़ा बन्धु है; अतएव मेरी स्नेह की पात्र सुन्दरी की खबर तो कहो। हे मुग्धे! मुग्धे! तुझे कौन ले गया? क्यों तू इस प्रकार कहीं छिपकर ठहरी हुई है? हाय कुञ्जर, क्या तू यमका दूत था? तू क्यों रोष से मेरे प्रतिकूल हो गया? ऐसे समय पर कोई एक विद्याधर जो सुन्दररूप, विद्यारूपी सागर का पारगामी था वह चिरकालीन स्नेह धारण करता हुआ राजा के आगे आकर खड़ा हो गया।

16. विद्याधर-द्वारा करकण्ड को सम्बोधन

उस खचरवरने राजा को बुलाते हुए कहा—हे नरपति! तू इतना अधिक क्यों रोता है क्यों एक महिला के कारण अपनी देह को खपाता है। लोगों को यह महिला दुःख-समूहों का घर है। जो नारी नरकवास उत्पन्न करती है, ऐसी नारी के साथ क्यों निवास किया जाये? जो चित्त में परिस्फुरित होने मात्र से ज्वर (ताप) उत्पन्न करती है, ऐसी दुःख-उत्पादक नारी का कौन अनुसरण करे ? रमणी के संग से भववल्ली (जन्ममरणरूप संसार की बेल) बढ़ती है और वह मनुष्य के अंग में दुःख लाती है। जिसके द्वारा बलवान्, बलहीन कर दिये जाते हैं, ऐसी अबला का वे ही सेवन करें जो नितान्त हीन हों। इस वचन को सुनकर राजा निःश्वास भरता हुआ व 'हाय मदनावली' कहता हुआ उसकी ओर देखने लगा। खेचर को देखकर वह अपने मनमें लज्जित होकर एकक्षण नीचे को मुख किये रह गया। तब उस खेचर ने उसे पुनः-पुनः कहा कि तू अपने सब लोगों को छोड़ कर क्यों बैठा है? उसने उदास मन राजा को कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा सम्बोधित किया।

17. विद्याधर से करकण्ड का प्रश्न

उसके वचन को सुनकर समर-धीर, करकण्डवीर अपने मनमें सन्तुष्ट हुआ। उसने खेचर से पूछा कि आपने धर्मोपदेश देने योग्य यह रम्य वचन-विलास कहाँ से प्राप्त किया ? क्या आपने कोई ऐसे मुनिवर की सेवा की है जिन्होंने दूर से ही हर्ष और रोष को नष्ट कर दिया है और जो दोषरहित हैं? आपके दर्शन से मेरे नेत्र ऐसे स्निग्ध हुए हैं कि वे आपको देखकर अन्य किसी की ओर जाते ही नहीं हैं। क्या आप अन्य जन्म के अपने कुलरूपी गगन में चन्द्र के समान आनन्द उत्पन्न करने वाले मेरे कोई बन्धु हैं? अथवा, मैं संशयपूर्वक आप से पूछता हूँ कि आप कोई देव तो नहीं हैं? मुझे निश्चय से कहिए। यह वचन सुनकर वह गम्भीर-मति व धीर खेचर राजा से कहने लगा—पूर्व में परेवा के कुल में जन्म लेकर मैं तुम्हारा नयन-रम्य पक्षी था। उस जन्म में जब मैं अपनी गृहिणी (परेवी) के साथ रमण करता हुआ तुम्हारे यहाँ पिंजड़े में रह रहा था, तब एक विषधर बड़ी फूत्कारों से फुफकारता हुआ मेरी ओर बढ़ा।

18. विद्याधर-द्वारा पूर्वजन्म-वृत्तान्त कथन

उसने मुझे देखकर मेरा पैर पकड़ लिया। तब तुम मृदुस्वभावी होते हुए उसी क्षण करुणापूर्वक विषधर से मेरी रक्षा करने के लिए दौड़ पड़े, और मुझे आपने उससे छुड़ा लिया। किन्तु उसके भय से मैं मूर्च्छित हो गया। तब आपने करुणा से मुझे णमोकार मन्त्र दिया। उसके फल से मैं जो शुक था वह गुणसमूहों का निधान विद्याधर उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने तुम्हें गज के साथ युद्ध करते देखकर बड़े संशय से पहचाना। मैं तुम्हारे उस महान् उपकार को धारण करता हुआ विद्याधर कुमारों के साथ रमण करते हुए भी यह सोचकर तुरन्त यहाँ आया हूँ कि मैं भी सम्भवतः तुम्हारा सहायक हो सकूँ। वह जो विषधर था वह भी मुनि-द्वारा दिये गये णमोकार मन्त्र के प्रभाव से उसी क्षण खेचर हुआ। चूँकि उस अवसर पर उसका तुम्हारे द्वारा पराभव हुआ था, अतएव उस खेचर ने उस महान् हाथी का रूप धारण करके तुम्हारी पीनपयोधरा मनोहारिणी गृहिणी मदनावली का अपहरण किया है।

19. विद्याधर-द्वारा मदनावली की पुनः प्राप्ति का आश्वासन

ऊँचा मुँहकर हाथ से उरस्थल को पीटते हुए, तथा हे मुग्ध! ऐसा कहकर तुम्हें रोते हुए देखकर मैं यहाँ आया हूँ। अब आप रोइए मत, तथा अपने मनके विषाद को छोड़ दीजिए। जब आप अतिप्रवर व महावलवान् (द्रविड राजाओं) को पराजित कर व पृथ्वी को जीतकर यहाँ फिर लौटेगें तब वही खेचर आपको महागुणशाली मानकर अपने स्वामिश्रेष्ठ के रूप में प्रणाम करेगा। तभी आप अपनी पूर्णचन्द्रमुखी कामिनी को भी पुनः प्राप्त करेंगे। उस खेचर की इस ललित वाणी को सुनकर दीर्घपाणि करकण्ड ने पूछा—हे खेचर! जो सुलक्षण व गुणविनीत स्त्रियाँ हरणकर ले जायी गयी हैं, वे क्या पुनः वापस आ सकती हैं? तब खेचर ने मधुर स्वर से कहा—अन्य क्या, मैं तुम्हें (इसका उदाहरण) कहता हूँ। नरवाहनदत्त की कनक व अमर के समान श्रेष्ठ गुणवती, निर्मल वल्लभा अनेक विद्याओं के समूहों-सहित उस राजा को शीघ्र ही प्राप्त हुई थी।

इति मुनि श्री कनकामर विरिचित-भव्यजनकर्णावतंस पंचकल्याणविधानरूप कल्पतरु फल सम्पन्न करकण्ड महाराज चरित्र में नील-महानील का वर्णन करने वाला पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त।

सन्धि—6

1. नरवाहनदत्त का राज्याभिषेक व पितृशोक

करकण्ड के पूछने पर उस खेचर ने कहा—हे राजन्, अब तू एकाग्र मन से नरवाहनदत्त की उस कथा को सुन, जिसके द्वारा देवों की सभा भी आनन्दित हुई थी। इसी भरतक्षेत्र में, वत्सदेश में प्रधान, प्रशंसनीय कौशाम्बी नगरी है। वहाँ वत्सराज नराधिप था जिसका प्रतिदिन धर्म में निर्मल अनुराग रहता था। उसकी गृहिणी सुवीणा नाम की थी और वह भी हृदय से जिनवर के चरणों का स्मरण करती थी। उस राजा का पुत्र अतिशय गुणशाली महायशस्वी नरवाहन नाम का हुआ। वह समस्त कलाओं का आलय, अति तेजस्वी, एवं रूप में कामदेव के समान था। उसे पिता ने बुद्धिमान् देखकर शीघ्र ही उसका पट्टबन्ध (राज्याभिषेक) कर दिया और स्वयं आपने ऋषीन्द्र वृत्ति (मुनि-दीक्षा) स्वीकार कर ली, तथा त्रिभुवन में अपनी कीर्ति फैलायी। कामवासना को दूर करने वाला घोर तप करके, वह सिद्धिविलासिनी (मुक्ति) के द्वार पर आ पहुँचा। इधर अपने पिता के वियोग में उदास-मन होकर नरवाहनदत्त कहीं भी प्रसन्न नहीं होता था। वह अश्रुजल से अपने मुख को गीला किये हुए विह्वल रूप से मुँह उठाये इधर-उधर फिरता था।

2. नरवाहनदत्त का वनमें मुनिदर्शन

नरवाहनदत्त को वह दी हुई अमित (अपार) लक्ष्मीयुक्त राजलक्ष्मी भाती नहीं थी। वह हृदय में पिता का शोक धारण करता हुआ सुन्दर शारीरिक सुखों की इच्छा नहीं करता था। पिता के शोक को अपने मन में लिये हुए वह नरपति एक दिन सहज ही उस कालिंजर गिरि पर जा पहुँचा जो देवों, खेचरों तथा नरवरों के हृदय को रमणीय था। वहाँ वह विद्याधर व किन्नरों के नेत्रों को इष्ट राजा पुष्पों की पंक्तियों से युक्त नन्दन वन में प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने एक यतिवर के दर्शन किये जो लोगों के मन में धर्मानुराग उत्पन्न करते थे, सहज-विरोधी जीवों में परस्पर स्नेह उत्पन्न करते थे; मिथ्या मत (मिथ्यात्व) से लोगों के मन को हटाते थे; परमात्म

प्रवचन का अनुराग करते थे; जिन्होंने दोषों का दूर से ही निवारण किया था; तथा जिन्होंने रोष का परित्याग कर दिया था। नरवाहन ने तुरन्त इन मुनिवर के चरणकमलों में अपना मन योजित किया (लगाया) और फिर बड़ी भक्ति से उस गुरु की वन्दना की जिन्हें सभी लोग पैरों में पड़कर नमस्कार करते थे।

3. मुनिराज का नरवाहनदत्त को धर्मोपदेश

फिर नरवाहनदत्त ने मुनिराज से कहा—नाग, देव और नरेन्द्र जिनके चरणों में नमस्कार करते हैं, ऐसे हे मुनिवरेन्द्र, आप करुणा करके मुझे वह निर्मल धर्म का सार कहिए जिससे मैं संसार का पार पा सकूँ। तब शिवमार्ग में दृढ़ अनुराग बाँधने वाले उन वीतराग भट्टारक ने कहा—बहुत प्रलाप करने से क्या लाभ? अपने हृदय से जिनवर की भावना करो। हे नराधिप, निरन्तर दान में बुद्धि व अति निर्मल मन की विशुद्धि करते रहना चाहिए। जो कोई पाँच अणुव्रतों को अपने सिर के ऊपर रखकर (धारण करके) तथा दिव्य शिक्षाव्रत और गुणव्रत लेकर, औषध, आहार, अभय और सुज्ञान, इन चार भेदों से विभक्त दान देता है, वह, हे नरेश्वर, मनोवांछित निर्मल समृद्धि तथा विपुल ऋद्धि रूप फल पाता है। जो मनुष्य निशिभोजन को त्याग देता है तथा मौनव्रत से भोजन करता है, वह अप्सरारूपी गणिकाओं से सेवित देवों के विमान में लीला करता हुआ रहता है।

4. निदान वैर का दृष्टान्त

अपने रूप से नरेन्द्रों व सुरेन्द्रों का उपहास करने वाले, हे नरेन्द्र, मन में शोक नहीं करना चाहिए। शोक से बड़ा कर्म बँधता है, जिससे शोभनीक मानव-जन्म नहीं प्राप्त होता। हृदयहारी व नयनप्यारी सुन्दर नारी वैर से उत्पन्न होती है, वे वैर के निदान से ही मनरंजन पुत्र व इष्ट भ्राता आदि सब आते हैं। वे एक भव में दुःख उत्पन्न नहीं कर सकते, इसलिए वे पराभव की भावना रखकर निदान करते हैं कि अन्य भव में जिस प्रकार हम इसे दुःख दे सकें, ऐसा हमारा जीव उत्पन्न होवे। इस विषय पर मुनिगण ने जो कथा चिरकाल से प्रगट की है उसे, हे नरेश्वर,

स्थिर मन से सुनो। इसी देश में प्रसिद्ध व नयन रम्य मथुरापुरी है, जहाँ के भवन मणियों से चित्रित हैं। वहाँ माधव और मधुसूदन नाम के दो ब्राह्मण थे, जो दायाद होते हुए परस्पर हाथियों के समान वैरी थे। वे अपने मन में महान् वैर रखते थे और एक दूसरे के गुणगण को सहन नहीं करते थे। दिवस जाते शीघ्र ही माधव की धन-ऋद्धि पराङ्मुख हो गयी। यहाँ तक कि उसकी गृहिणी के लिए वस्त्र भी प्राप्त नहीं होता था। उसकी समस्त बलशक्ति भी क्षीण हो गयी।

5. माधव की दुर्भावना और मधुसूदन की सज्जनता

तब उसकी गृहिणी ने अपनी दुरावस्था में एक दिन मन में विचार किया (और अपने पति से कहा)—हे प्रियतम, तू कुछ मेरा वचन सुन। जाकर तुरन्त मधुसूदन का अनुसरण कर। वह भूख से पीड़ित व निर्धन हम दोनों जनों को भोजन देगा। उसका यह वचन सुनकर माधव ने गद्-गद् स्वर से उत्तर दिया—मैं अपनी मानोन्नति को छोड़कर दुःखकारी पराये के घर में जाकर कैसे प्रवेश करूँ? अपने कौरों से विष खाकर मर जाना अच्छा, किन्तु दुर्जन के घर किंकर होना अच्छा नहीं। इसपर माधव की गृहिणी ने फिर कहा—ऐसी मानोन्नति का पुंज लेकर रहने से क्या लाभ? उसकी यह बात सुनकर माधव सज्जन मधुसूदन के घर गया। दुखी और उदास मन माधव को गृहिणी-सहित अपने घर आया देखकर मधुसूदन हाथ जोड़कर एकाग्र मन से उसके सम्मुख उपस्थित हुआ।

6. माधव का निदानपूर्वक मरण

मधुसूदन ने विनय से सिर झुकाकर उनसे कहा—हे मेरे माता-पिता, तुम्हें कौन चिन्ता है? मैं तो तुम्हारा दिया अन्न खाता हूँ। जगत् में करुणावान् सज्जन क्यों न अति माननीय और वन्दनीय होवें? किन्तु वे दोनों (माधव और उसकी गृहिणी) अपने हृदय में मात्सर्य (डाह) रखते हुए मधुसूदन की ऋद्धि को अपने मन में सहन नहीं करते थे। एक दिन माधव ने रोष से अकस्मात् प्रयाग को गमन कर दिया। वहाँ उसे एक कृश तपस्वी का दर्शन हुआ और वह एक क्षण उसके

चरणों के समीप बैठा। माधव ने यतिवर से पूछकर निष्ठुरभाव से तपश्चरण ले लिया। उसने सल्लेखना द्वारा अपने शरीर को क्षीण कर डाला और वह तत्क्षण निदान करके मरा कि मैं मथुरापुरी के मधुसूदन का प्यारा पुत्र होऊँ और फिर उसे महान् सुख देकर पीछे मेरा मरण हो जाये।

7. मधुसूदन का पुत्र-प्रेम व मोह का निराकरण

इस प्रकार माधव कुछ दिनों पश्चात् मधुसूदन के सुन्दर गृह में उत्पन्न हुआ। बचपन में ही वह जनप्रिय, सकल कलाओं का निधान तथा लोगों में प्रधान हो गया। फिर एक दिन वह विप्रका छोटा-सा पुत्र यमदूतों-द्वारा अपहृत (मृत्यु को प्राप्त) हो गया। मधुसूदन पुत्र के शरीर का अनुसरण करता हुआ, सिर धुनता हुआ, भूतल पर गिर पड़ा। वह उसका कण्ठ छोड़ता ही नहीं था। स्वयं मरने जाता व रोता हुआ एक क्षण भी नहीं रुकता था। वह बेचारा समझाने पर भी समझता ही नहीं था। अपने पुत्र के ऊपर उसने ऐसा अनुरागभाव बाँधा था। पुत्र के दुःख से वह ब्राह्मण उसी में चित्त लगाये मरने के लिए प्रयाग को गया। दुःखाग्नि से दग्ध होकर जब वह मरने लगा, तब किसी खेचर ने उसे रोका। उस खेचर ने उसे उस माधव का वृत्तान्त कहा जो तपश्चरण करके निदानपूर्वक मरा था। उसने कहा— हे मधुसूदन, माधव का वही जीव मथुरा नगरी में तुम्हारा मनोहर पुत्र हुआ था।

8. नरवाहनदत्त आत्मनिवेदन

विद्याधर का यह वचन सुनकर मधुसूदन शोक छोड़ अपने घर लौट गया। विद्याधर नरवाहनदत्त से बोला—हे नरेन्द्र, सभी नरेन्द्र और सुरेन्द्र शोक से विडम्बित हुए हैं। इसलिए शोक नहीं करना चाहिए।

तत्पश्चात् अवसर पाकर वहीं पर बैठे हुए किसी एक खेचर ने राजा नरवाहनदत्त से पूछा—हे दिव्यदेह नरपति, आपने इस विशाल पृथ्वी को किस प्रकार अपने वशीभूत किया? तब उस मणिरत्नमयी मुकुट से मण्डित सिरवाले खेचर को नरेश्वर ने कहा—कुमारकाल में मैं सबलशरीर था। कौन ऐसी मानिनी स्त्री थी, जो

मुझ से स्नेह न करे। मेरे नाम से शत्रुजन थर्रा जाते थे और चित्त में भयभीत होकर वन का अनुसरण करते थे। इस प्रकार जब मैं अपने स्वजनों-सहित रहता था, तब एक खेचर मेरी गृहिणी का अपहरण कर ले गया। उसके वियोग से दुखित होकर विह्वल हुआ मैं किसी प्रकार भी अपने चित्त को प्रसन्न नहीं कर पाता था (और ऐसा विचार होता था) कि क्या मैं देश से निकल जाऊँ, अथवा कहीं जाकर आत्मघात कर लूँ?

9. नरवाहनदत्त पत्नी-वियोग में भ्रमण

ऐसा सब चिन्तन कर मैं अपने घर से निकल पड़ा और उस सुरसरि (गोदावरी) के तीर पर जा पहुँचा जो सुरगणों को प्यारा है। प्रतिष्ठान (पैठण) के समीप मुझे सुख के निवास व दुःख के विनाशक जिनवर के दर्शन हुए। जिनेन्द्र को प्रणाम कर मैं उसी स्थल पर (मन्दिर में) विश्राम करने लगा, जहाँ कामदेव का वाण प्रवेश नहीं करता। जब निद्रा के भार से मेरे नेत्र मुँद रहे थे, तभी मैंने उसी क्षण एक शब्दध्वनि सुनी—'हे कुमार, तू विरक्त चित्त हुआ क्यों सो रहा है; शीघ्र ही तुझे अपनी भार्या मिल जायेगी।' इससे मेरे मुख पर रंग आ गया, और मैं जिनमन्दिर से निकल पड़ा। मैंने चारों दिशाओं में देखा किन्तु वह मनोहर सुन्दरी मेरी आँखों को कहीं दिखायी न दी। वहाँ से निकलकर जब मैं उपवन में पहुँचा, तब वहाँ मुझे कोई एक सुन्दरी दिखायी पड़ी। वह अपने मुखकमल को हस्तकमल पर करके अँगुली से भूतल पर कुछ लिख रही थी। मैंने कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा उससे सब बात पूछी।

10. विद्याधरी का आत्मनिवेदन

मैंने पूछा—हे सुन्दरि, तू इस वन में क्यों बैठी है, और शान्त नेत्रों से अपने मन में क्या ध्यान कर रही है? तब, हे सुज्ञानरूप कमलों के प्रखर सूर्य खगेन्द्र, उसने मुझ पर प्रगट किया कि विद्याधर पर्वत के दक्षिण भाग में सिन्धु-शिखर पर जयन्ती नाम की पुरी है, वहाँ धूमकेतु नाम का विद्याधर राजा रहता है। उसके घर

में उसकी सुनन्दा नाम की गृहिणी है। परस्पर स्नेह करने वाले उन दोनों की मैं पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन अपनी सखियों के साथ चलकर मन में क्रीड़ा की इच्छा करके यहाँ आ पहुँची और नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में आसक्त हुई अपनी सुन्दर सखियों के साथ खेलने लगी। जब क्रीड़ा करके हम सब सुख से बैठी थीं, तब मदनामर नाम का खेचर यहाँ आया। उसे देखकर मैं मदन से विह्वल हो गयी, और पवन से आहत केली के समान काँप उठी। मेरे हृदय को जानकर मेरी सहचरी ने जाकर उस विद्याधर के सहचर का अनुसरण किया।

11. उसके प्रेमी विद्याधर का परिचय

उस निर्मलमति महासखी ने उस मदनामर के सखा से पूछा—कहिए, ये कौन हैं? उसने कहा—इस रम्य विजयार्ध पर मनोहर श्री उत्पलखेड़ नगर में पद्मदेव नाम का खेचर हुआ है, उसी का यह मदनदेव नाम का पुत्र है। उत्तर विजयार्ध में मदनवेग का गुणनिधान पुत्र पवनवेग रहता है। उसी के स्नेह से यह वहाँ जा रहा है। इसी बीच तुमने उसे यहाँ देख लिया है। उसने भी मेरे महान् कुल की बात पूछ ली। मेरे स्नेहल मन को लेकर वह खेचर, तथा पूर्वोक्त वार्तालाप करके उसका वह सहचर, ये दोनों विद्याधर वहाँ से चले गये। मदनामर पुनः लौटकर आया। किन्तु लज्जावश मेरे मुख से वाणी ही नहीं निकली। उसके साथ बोलने में भी मुझे लाज लगी। तब मेरी सखी ने तुरन्त उससे कहा—हे सुन्दर, प्रिया के साथ बैठिए। इस पर उसने अपने हाथ से अपने कण्ठ की सुन्दर मोतियों की माला ज्यों ही मेरे कण्ठ में डाली, त्यों ही एक सहचरी मुझे बुलाने आ पहुँची।

12. ऋषिकन्या-द्वारा शाप व भविष्यवाणी

फिर केतुमती मुझे घर ले गयी। मैं घर में उदास मनसे दुःखपूर्वक रही। मैं जब पुनः लौटकर उसी मार्ग पर आयी, तब मुझे वहाँ मदनामर दिखायी नहीं दिया। उसके विरह की बात एक कोई दुःखहारिणी विद्याधरी ने मुझे सुनायी कि—मदनामर पुनः-पुनः बहुत विरुद्ध वचन बोलता हुआ (असंबद्ध प्रलाप करता हुआ) मुँह

उठाये विह्वल होकर घूमता हुआ, विरहानल से संतप्त होकर तेरा स्मरण करता हुआ, शीघ्र एक ऋषि-कन्या से जा लगा। उस कन्या ने तुरन्त घबराकर (अपने शाप-द्वारा) मदनामर को सूआ बना दिया। तब उसकी सखी ने धर्म से तरलित होकर तुरन्त करुणापूर्वक ऋषि-कन्या से कहा—हे देवि, तुम इतना तो अनुग्रह करो कि यह अपनी भार्या से क्रीड़ा कर सके। तब उस महासती ने कहा कि जिस दिन नरवाहनदत्त से मनोहर रूपवती व यशःप्राप्त रतिविभ्रमा नाम की कन्या से विवाह होगा—

13. नरवाहनदत्त के पास चित्रपट लेकर लीलावती का आगमन

हे सखि, तब यह पुनः सुन्दर और ललित देह मनुष्य हो जावेगा। हे सुन्दर, (नरवाहनदत्त राजा)—यह बात उस विद्याधरी ने मुझ से कही। और उसी को मानकर मैंने वनवास ग्रहण कर लिया। (नरवाहनदत्त विद्याधर से कहता है कि) यह सुनकर मैं जब वहीं बैठा था, तब वहाँ लीलावती आयी। उसके हाथ में एक सुन्दर चित्रपट था, जो देखने वाले लोगों के चित्त को मोहित करता था। मैंने उद्यत होकर उससे पूछा कि तू किस कार्य से यहाँ आयी है? तब उसने कहा—"हे प्रवरवीर, जनवल्लभ, सुन्दर, मेरुधीर, सुन। विजयार्द्ध के दक्षिण में सिन्धु के तीरपर जहाँ देवों और खेचरों (को प्रसन्न करने वाली) उत्तम सुगन्धित वायु चलती है, वहाँ रत्नों का निधान, नयनाभिराम कनकपुर नाम का नगर है। वहाँ विद्याधरों के समूहों सेवित हंसरथ नाम का राजा है। वह विमला देवी से युक्त ऐसा मनोहर दिखायी देता है जैसा हंसिनी के साथ हंस।

14. नरवाहनदत्त की पत्नी मदनमंजूषा का पता

वह किसी एक मानवी को हरकर ले आया है। किन्तु उस मानवी को उसके प्रति कोई अभिलाषा नहीं है। वह नयनरम्य मदनकरंडी (मदनमंजूषा) उसके महल में धर्म का अनुसरण करती हुई रहती है। वह किसी के साथ बातचीत भी नहीं

करती। उसने चुपचाप मन लगाकर अपने पति का चित्र लिखा। उसे देख-देखकर जब वह अपने मन में प्रसन्न हो रही थी, तभी वेगवती नाम की सुन्दर खेचरी वहाँ आ पहुँची। उसने स्मरमंजूषा (मदनमंजूषा) से पूछा—आपने यह कौन लिखा है, (किसका चित्र बनाया है) मुझे कहिए तो यह कोई खेचर है, या किन्नर, या देव अथवा मनुष्य, या प्रत्यंचापर बाण चढ़ाये मन्मथ ही है? तब मदनमंजूषा ने वेगवती से सारी बात कही—यह मेरा सुन्दर पति नरवाहन है। उसने उस फलक को लेकर ज्यों ही देखा, त्यों ही वह शरीर धुनकर भूतल पर गिर पड़ी। वेगवती को मूर्छित हुई जानकर कनकमती ने उसका हास्य किया—इसे तो कोई वर रुचता ही नहीं था, और अब रूप देखने मात्र से धरा पर पड़ रही।

15. रतिविभ्रमा का चित्रपट

फिर कौतुकवश देखने के लिए उस प्रशंसनीय फलक को कनकमती ने ले लिया। ज्यों ही उसने अपने मन में उसकी परिभावना की, त्यों ही उसी क्षण वह भी धरणीतल पर गिर पड़ी। जब वह दुःख से किसी प्रकार सचेत हुई, तब उस सरलबाहु से सखियों ने पूछा—हे सखि, तू क्यों मूर्च्छा को प्राप्त हो गयी? तेरे हृदय में जो दुःख हों वे कह। उसने कहा—हे बहन, इस फलक पर जो चित्र लिखा है, उसने मेरे चित्त को निरर्थक (विवश) कर डाला। हे माता, यह कोई सुर है, या काम? मुझे इसका नाम बहुत भाता है। (पटवारिणी लीलावती नरवाहनदत्त से कहती है कि) उसी के विरह से अति उदासमन होकर उन दोनों विद्याधरियों ने मुझे भेजा है। बहुत पहले जो चारण मुनिराज ने कहा था, वह उन्होंने अपने मनमें सोच रखा है—जो कोई रतिविभ्रमा का परिणय करेगा, वह हमारा भी पति होगा। तब उस रतिविभ्रमा का सुन्दर चित्रपट लिखाया गया और उस पटको लेकर मैं यहाँ आयी हूँ।" जब उस पट को अपने हाथ में लेकर मैंने (नरवाहनदत्त ने) उस मनोहर रूप को देखा तब मेरा हृदय मूर्च्छा से रुद्ध हो गया, और, हे खेचर, मुझे कुछ भी स्मरण न रहा।

16. पति-पत्नी का पुनर्मिलन व नरवाहन की समृद्धि

तब वह निर्मलमति लीलावती मुझे उन सखियों के बीच ले गयी। वहाँ जाकर बड़े उत्साह से मैंने रतिविभ्रमा का परिणय कर लिया। वेगमती के साथ कंचनमती को भी विवाहा, और फिर लीलावती को भी। अन्य पाँच-सौ कन्याओं को भी वहीं विवाहा, जहाँ मदन का निवास बन गया था। जिसे वह खेचर हरकर ले गया था, वह मेरी सुमनोहर गृहिणी भी मुझे मिल गयी। मैंने सैंकड़ों खेचरों को वशीभूत किया, शत्रु के मन में भय उत्पन्न किये, और जहाँ निरन्तर विपुल ग्राम बसे हुए हैं, ऐसी जलधिं-पर्यन्त मेदिनी मेरे अधीन हो गयी। तब, हे लोकसेवित देव, मुझे जनपद में लाया गया और मेरा पट्टबन्ध (राज्याभिषेक) कर दिया गया। हे खेचर, तूने जो कुछ मुझ से पूछा, वह सब वृत्तान्त मैंने सुना दिया। मैंने कनक और अमरदान से लोगों को सन्तुष्ट कर स्थापित किया, तथा जिनेन्द्र के चरण-युगल की वन्दना की।

इति-मुनि श्री कनकामर विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान-कल्पतरु-फलसम्पन्न करकरण्डमहाराज-चरित्र में नरवाहनदत्त-आख्यानश्रवण नामक छठा परिच्छेद समाप्त।

सन्धि—7

1. शुभ-शकुन

खेचर ने कहा—हे सुबन्धु करकण्ड, मैं आप से कहता हूँ कि आप यहाँ से तुरन्त प्रयाण कर दीजिए, क्योंकि इस समय बहुत सुन्दर सुहावना शकुन हुआ है, जिसके फलते तुम्हें नारीसुख का लाभ होगा। (इसपर करकण्ड ने पूछा) कहिए—हे धीर, खेचरवीर, कौन से शकुन के फल से मुझे नारी की प्राप्ति होगी। इसपर खेचर ने कहा—देखिए अपने सम्मुख दिव्यचक्षु मुनिको; यह शकुन अवश्य अपना फल देगा। तब करकण्ड ने पूछा, कहिए, किसने इस शकुन का ऐसा फल पाया है? तब खेचर ने इस फल-प्राप्ति की कथा कही। कोई एक भूखा, क्षीण-शरीर ब्राह्मण घर छोड़कर विदेश को चल पड़ा। उसने वनमें एक यतिवर को देखा, जिससे उसके मन में महान् सन्तोष हुआ। इसी सुहावने शकुन को मन में धारण कर वह हाथ ऊँचे उठाकर नाचने लगा। उसी समय क्षणार्द्ध में वहाँ आखेट खेलता हुआ कोई राजपुत्र (क्षत्रियकुमार) आ पहुँचा। उसने अटवी में उस ब्राह्मण को अकेले हर्ष से नाचते हुए देखा। यह देखकर उसने पूछा—हे भट्टारक प्रिय, मैं तुम से पूछता हूँ कि तुम मुक्तभाव से इस अरण्य में क्यों नाच रहे हो? क्या तुम्हें कोई मनोहर वस्तु प्राप्त हुई है, अथवा क्या, हे भाई, तुम बावले हो गये हो?

2. शकुन के फल का उदाहरण

तब राजपुत्र से उस द्विजेश्वर ने कहा—हे सरलचित्त मित्र, मैं वातगृहीत (बावला) नहीं हुआ। बिना भूषण-वस्त्र के जाते हुए, व आनन्द महारस को पाते हुए यहाँ, जहाँ प्रबल पंचानन निवास करता हैं, मैंने एक सुहावना शकुन पाया है। उस शकुन के फल से मुझे राज्यलक्ष्मी का लाभ होगा, और मैं हरी-भरी पृथ्वी का भोग करूँगा। यह सुनकर उस राजकुमार ने तुरन्त भट्ट से कहा—हे उपाध्याय, मैं तो तुम्हारा शिष्य हूँ; हे भट्टारक, यह शकुन आप मुझे दे दीजिए, और मेरे आभूषण तथा दिव्यदेह घोड़े को आप ले लीजिए। इस पर वह विप्र आभरणों-सहित घोड़े

को लेकर, तथा अपना शकुन उस राजपुत्र को देकर, अपने घर चला गया। इधर नये मृणाल के समान कोमल देहवान् कुमार प्रसन्न होकर आगे बढ़ा। तब उसी समय जिन शासन देवी ने उसके सम्मुख अपनी विद्या से जो शरीर निर्माण किया था, उसे छोड़, अन्य ऐसा शरीर धारण किया जिससे देखने वालों का मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया।

3. शासनदेवी का अवतार

फिर वह मृगनयनी राम की स्त्री (सीता) के सदृश सस्नेहचित्त होकर उसके आगे आयी और बोली—हे कुमार, मैं तुम्हारी अनुचरी हूँ और तुम्हारे शत्रुओं का प्रलय करने के लिए उत्पन्न हुई हूँ। कुमार उसके साथ अटवी के मध्य भाग में गया जहाँ मनुष्यों, खेचरों, किन्नरों व देवों का भी प्रवेश असाध्य था। वहाँ उन्होंने एक पुराना कूप देखा। तथापि उनके हृदय में उससे कोई बड़ा डर प्रविष्ट नहीं हुआ। वहाँ उन्होंने देखा कि एक सर्प निष्ठुर पंजों वाले मेढ़क से युद्ध कर रहा है। उनको युद्ध करते देख उस कुमार ने तुरन्त अपने अंग को तृण समान समझ कर तलवार से अपना मांस काटा, और उनके खाने के लिये उनके बीच फेंक दिया। उसके साहस को जानकर वे दोनों मानव होकर उसके आगे आ उतरे। एक ने अहीर का रूप बनाया था, और दूसरे ने वटु (ब्राह्मणकुमार) का। उन तीन व्यक्तियों से वह कुमार ऐसा सुशोभित हुआ जैसा मानो स्वर्ग से कोई सुर आ गया हो।

4. राजपुत्र की रक्षा और समृद्धि

उन्हें किसी राजा ने देखा और उत्साहपूर्ण वचनों से उनका सम्मान किया। उस रूप की पिटारी नारी को देखकर राजा के मनमें प्रलय की बीमारी प्रविष्ट हो गयी। उस नारी की अभिलाषा को प्राप्त होकर राजा ने कुमार के प्राणनाश का विचार किया। राजा उस कुमार को शिकार खेलने ले गया। वहाँ एकान्त में एक अन्धकूप था। राजा ने कुमार को उसमें ढकेलकर पटक दिया और आप महिला के सम्मुख पहुँचा। किन्तु वहाँ उसे सर्प ने डस लिया, जिससे वह मर गया। उसी समय मेढ़क कुमार को कुएँ से निकाल लाया। कुमार को राजपट्ट बाँधा गया और

सबने घोड़ों का समूह समर्पित किया। अब वह लीलापूर्वक राज्यलक्ष्मी का उपभोग करने लगा। एक बार उसने उस चकोराक्षी से पूछा—हे सुन्दरि, तू कौन है ? मुझे कह दे। मैं खूब स्नेह से आदरपूर्वक तुझ से पूछता हूँ। तब वह शासनदेवी अपना वही पुराना वृत्तान्त राजा को कहकर उसी क्षण अपने निवास स्थान को चल गयी।

5. करकण्ड का सिंहलद्वीप में रमण

खेचर ने करकण्ड से कहा—हे गुणसागर, सुन्दर, मैंने जो शकुन की कहानी कही, वह तुमने सुन ली। यह कहकर वह खेचर सत्यलक्ष्मीपुर नामक अपने घर चला गया। फिर एक दिन करकण्ड ने तुरन्त वहाँ से प्रयाण कर दिया। नरप्रधान करकण्ड राजा (बीच-बीच में) निवास (पड़ाव) करता हुआ सिंहलद्वीप पहुँचा, जहाँ राजहंस-शिशु मन को हरते थे; जहाँ सुर, खेचर व किन्नर रमण करते थे; जहाँ महिलाएँ गजलीला से चलतीं तथा अपने रूप से रति के रूप को भी पराजित करती थीं; जहाँ के लोगों का भोग-विलास देखकर देवों को देवलोक भी विस्मृत हो जाता था। करकण्ड ने नगर के बाहरी प्रदेश में अपना पड़ाव डाला, जिससे उस देश में शत्रु के आने की शंका बढ़ उठी। अमेय (दुर्जेय) करकण्ड अपने आवास को छोड़कर सहचरों के साथ रमण करने निकला। वहाँ उसे एक महान् वटवृक्ष दिखायी दिया, जो सैकड़ों पक्षियों से भरा हुआ था, मानो देवों से सुरक्षित हुआ कल्पवृक्ष हो। जो दलवान् (नये विकसित होते हुए) पत्तों से युक्त था, तथा जो समान रूप से विस्तार लिये हुए था। करकण्ड ने उस वटवृक्ष के दीर्घ और अति सुकोमल पत्तों को देखकर अपना छोटा-सा गुलेल-धनुष ले उन सबको छेद डाला।

6. सिंहलनरेश-द्वारा करकण्ड का स्वागत

जब करकण्ड ने बाण से वटपत्रों को वेध डाला, तब यह बात गुप्तचर ने आकर राजा से कही—हे नरपति, चारण मुनिवर ने जिसकी भविष्यवाणी की थी, वह वर अब निश्चय से आ गया है। मैं नहीं जानता हूँ कि वह वरुण है या चन्द्र, अथवा कोई नरेश्वर है, कि सुरेन्द्र। उसने राजपुत्रों-सहित वन में खेलते हुए एक

क्षण में वटपत्रों के समूह को वेध डाला है। तब राजा ने अपने प्रधान पुरुषों को भेजा। वे सयाने पुरुष तुरन्त करकण्ड के शिविर को गये और चम्पाधिराज से बोले—हे सरलचित्त मित्र, तुम्हें हमारे नरपति ने बुलवाया है। उन्हें आपके ऊपर स्नेह हो गया है। अतएव आप उनके घर चलिए। वह सुनकर करकण्ड राजा बोले—यदि तुम्हारा राजा स्वयं मेरे सम्मुख आयेगा, तो मैं तुम्हारे राजा के रत्नों से निर्मित सुन्दर महल में आऊँगा। यह सुनकर उन्होंने उसी क्षण घर जाकर अपने राजा से यह बात कही—हे राजन्, वे आपके घर तभी आयेंगे, जब आप स्वयं उन्हें लेने जावें। यह सुनकर राजा निकल पड़ा और चम्पाधिपति के सम्मुख पहुँचा।

7. रतिवेगा का प्रेमभाव व परिणय

सिंहल के राजा ने अति तेजस्वी करकण्ड को देखा, मानो वह शरीरवान् कामदेव ही हो। उस गुणसागर राजा ने अनुराग से आदरपूर्वक करकण्ड का नगर में प्रवेश कराया। नगर में प्रवेश करते हुए करकण्ड को लोगों ने ऐसे देखा जैसे मानो वह गोपालों-सहित विष्णुदेव (कृष्ण) ही हो। युवतीजनों के मन को संताप पहुँचाता हुआ करकण्ड राजा महल में आया। वहाँ उसे राजा ने अपनी सुललित भुजाओं वाली रतिवेगा नाम की पुत्री को दिखलाया। इस युवक का अवलोकन करते ही, मानो उसके (बालिका के) हृदय में कुसुम- (काम-) बाण प्रविष्ट हो गया। वह ऐसी विह्वल हुई कि कुछ मानती ही नहीं थी, न कुछ देखती थी और न कुछ सुनती। उसे अपने पिता की भी लज्जा न रही। वह काँपने लगी तथा रोमांच से उसकी वाणी लड़खड़ाने लगी। जब राजा ने अपनी पुत्री के (प्रेमभाव रूप) पसीने के प्रवाह को देखा, तब उचित समय पर उसका विवाह प्रारम्भ कर दिया। मोतियों के तोरणों से मण्डप सजाया गया; स्वर्णनिर्मित बड़ी-बड़ी चौंरियाँ लटकायी गयीं; तथा अति उच्च, मनोहर, रत्ननिर्मित निर्मल वेदी बनायी गयी।

8. करकण्ड की जलयात्रा

शीघ्र ही उसका ऐसा विवाह किया गया कि खेचर भी उसकी अभिलाषा करने लगे। उसे दहेज में धाराप्रवाह झरते मद से गीले गण्डस्थलों वाले प्रचण्ड

हाथी, एवं किंकिणियों की ध्वनि करते हुए उत्तम घोड़ों के समूह दिये, रत्नों से निर्मित मालाएँ दी, तथा अन्य भी जो कुछ नयनाभिराम होता है, वह सब राजा ने नाम ले-लेकर दिया। मन में सतुष्ट होकर उक्त समस्त वस्तुओं सहित अपनी पुत्री को अपने जामाता को अर्पित किया। राजा ने अन्य राजाओं को भी तुरन्त बहुत-से रत्न दिये और उनकी पहिरावनं की। सिंहल के राजा से विदा होकर, नृपं-प्रधान करकण्ड ने जलयान का संयोग किया और वह दुष्ट शत्रु राजाओं का प्रलयकाल, धरणीपाल उस यान पर जा चढ़ा। ध्वज-पताकाओं से फहराता हुआ वह यान बड़ा सुन्दर दिखायी दिया, और पवन के वेग से जल के मध्य चलने लगा। अन्य भी छयानवे हजार नौकाएँ नरसमूहों से खूब भर गयीं, मानो देवों के विमान अपनी जलगमन की आशा पूरी करने के लिए पृथ्वी पर चल रहे हों।

9. समुद्र में महामत्स्य का प्रादुर्भाव

जब वे यान मण्डित और वितानों से सुसज्जित होकर समुद्र में जा रहे थे, तब राजा करकण्ड ने एक महाकाय मत्स्य देखा; जैसे मानो उसने सागर का सार पा लिया हो; जैसे मानो उस रूप में विष्णु क्रीड़ा कर रहे हों; अथवा जैसे मानो स्वयं सागर करकण्ड की राज्य-ऋद्धि को देख रहा हो। उस मत्स्य की ऊँचाई 60 योजन एवं विस्तार इसके आधे का आधा अर्थात् 15 योजन तथा उसकी दीर्घता का मान 67 पाद था। इस प्रकार वह सागर-भर को रूँधकर स्थित था। वह मन्दर पर्वत के समान जल में प्रमाण रूप से उछलता-कूदता शोभा दे रहा था। धीरे-धीरे चलते हुए वह सुप्रचण्ड मत्स्य रोष से दौड़कर यान के पीछे लग गया। उसे दौड़ते हुए देखकर राजा ने उसी क्षण जलयान को खिंचवाकर रुकवा लिया। अन्य राजाओं ने भी भयभीत व व्याकुल होकर समस्त जलयानों को खड़ा करवा लिया, मानो उन्हें किसी दुष्ट देवता ने मन्त्रों के प्रभाव से स्तम्भित कर दिया हो।

10. मत्स्य से युद्ध और करकण्ड का अपहरण

उस मत्स्य को देखकर उस दुर्द्धर राजा ने अपना शान्तभाव छोड़, क्रोध धारण किया; तथा मल्लग्रन्थि बाँधकर एवं तलवार खींचकर, यान छोड़ रोष से दौड़ कर

तुरन्त समुद्र में छलाँग मारा। वह लपकता हुआ वहाँ पहुँच गया, जहाँ वह स्थूलकाय मत्स्य था। उसने उसके पेट के मध्य में प्रविष्ट होकर मत्स्य को मार डाला, उसके मर्मस्थल छेद डाले और चर्म फाड़ डाले। फिर वह वीर उछलता हुआ स्वच्छ जल में आ गया। उसी समय एक दुर्द्धर खेचरी राजा को ले उड़ी। राजा को हरा देख सुभटों ने चिन्ता की तथा दुःखी होकर तत्क्षण सागर में गोता मारा। सागर का समस्त जल खलभला उठा; यान परस्पर टकरा गये; हाय-हाय का करुण स्वर उठ पड़ा, तथा उसके शोक में सब मनुष्य सलबला उठे।

11. रतिवेगा का विलाप

जब वह प्रसन्नमुख नरसिंह जल में पड़ गया, तब सब लोग भयभीत हो उठे और उनका शोक बढ़ गया। नागकन्या के समान सुन्दरी रतिवेगा विमनस्क हो उठी तथा सर्वांग कम्पित एवं चित्त में चमत्कृत होकर मूर्च्छित हो गयी। तब उस गुणवती, मनोहर सुन्दरी को उसकी मुनियों के मनको भी दमन करने वाली रमणी सखियों ने खूब-चँवरियों की हवा करके, एवं जल की सहायता से मूर्च्छा से उठाया। तब वह अपने सुललित सरल करकमलों-द्वारा छाती पीटने लगी; और फिर डबडबायी आँखों तथा गद्गद स्वर से विलाप करने लगी। हाय, पापमलिन बैरी यम, यह तूने क्या किया? मैंने जिसे अभी ही अपने रमण के रूप में वरा था, उसे तू क्यों मुझ से छीन ले गया? हाय देव, तू क्यों ऐसा पराङ्मुख, दुर्जय और दुष्ट हो गया? हाय, मेरे सुलक्षण, सुविचक्षण स्वामी, तुम कहाँ चले गये? हे भट्टारक, हे नरश्रेष्ठ, मेरे ऊपर करुणा कीजिए। हे नाथ, दुःखसागर में पड़ती हुई, प्रलय को जाती हुई मुझे बचाइए। मैं एक दीन नारी हूँ। इस आपत्ति के आने पर मैं किसका स्मरण करूँ? तुम्हारे छोड़कर चले जाने पर अब मैं जीऊँगी या यों ही मर जाऊँगी? इस प्रकार शोकविमूढ़ होकर उसने शुद्ध हृदय से कहा (प्रतिज्ञा ली) कि अब मैं तभी बोलूँगी जब मुझे मेरा पति मिल जायेगा। तब मन्त्रिवर अत्यन्त शोक मनाकर, तथा दुःखी परिजनों को सम्बोधित करके, यानों को लेकर समुद्रतल पर गया और वहाँ पर उसने समस्त परिजन समाज को ठहरा दिया।

12. रतिवेगा-द्वारा पद्मावती की पूजा

जब वहाँ पर सेना का पड़ाव पड़ गया, तब रतिवेगा ने धर्मोद्योग (व्रतसाधन) किया। उसने रमणीक मण्डल का निर्माण किया, जैसे मानो जिनेन्द्र ने निश्छल धर्म का उद्धार किया हो। उस मण्डल के बीच उसने दिव्यदेवी पद्मावती को, नाम लेकर, स्थापित किया। पूर्व दिशा में जो देवियाँ स्थित हैं, वे उसके आह्वान करने पर वहाँ आयीं। उसने रक्त चन्दन के काष्ठ से गढ़ी हुई पद्मावती की मूर्ति की शुभ्र चन्दन व कुंकुम से अर्चना की; तथा फल-फूल व नैवेद्य से पूजा की; एवं उपवासपूर्वक उसका अनुस्मरण किया। उसने उपदेश-द्वारा जो बीज-मन्त्र पाया था, उसका नये कुंकुम और पुष्पों सहित जाप किया। लाल द्रव्यों से लिखकर, लाल वस्त्रों का परिधान करके, लाल (अग्नि आदिक) द्रव्य का ध्यान करके, फिर उसने स्थिर मन से देवता में अपना ध्यान लगाया।

13. पद्मावती देवी का प्रकट होना

रतिवेगा ने जब पूजा-अर्चा करके ध्यान लगाया, तब पद्मावती देवी वहाँ प्रकट हुई। वह कोमलांगी देवी धीरे-धीरे, लीलापूर्वक, एक अनिर्वचनीय, अपूर्व मुद्रा धारण किये हुए थी। उसने उस समय अत्यन्त सौन्दर्यमय रूप धारण किया था। वह शरीर से रक्तवर्ण थी, व मन से विशुद्ध। वह अपने चार हाथों में गुणयुक्त पुस्तक, भृंग (झारी), मुद्रांगुली तथा मृणाल लिये हुए थी। उसके कपोल कर्णकुण्डलों से चमक रहे थे, तथा उनके नूपुरों व काँची से किंकिणियों की झंकार हो रही थी। वह अपने सिर पर पाँच नागफण धारण किये हुए थी, एवं एक अपूर्व ही निर्मल प्रसन्नता फैला रही थी। वह पृथ्वीतल पर अपने चरण-कमलों को रखती हुई, तथा सुहावनी वाणी में कुछ कहती हुई आई। वह उरस्थल में मोतियों की माला पहने हुए थी, जिसकी कान्ति समस्त दिशाओं में फैल रही थी (यहाँ मौक्तिकदाम छन्द का प्रयोग है)। वह गुणों से भरी देवी क्षणमात्र में रतिवेगा के आगे आ खड़ी हुई और बोली—"मैं वरदान देती हूँ। हे कृशोदरि, जो कुछ तेरे हृदय में हो, सो तू माँग ले। मैं तेरे कारण ही धरणी पर उतरी हूँ।"

14. रतिवेगा की देवी से वरदान की प्रार्थना

जब देवी के मुखकमल को देखा, तब रतिवेगा की आँखों में अश्रु भर आये। (वह बोली—) हे भट्टारिके देवि, तेरे दर्शन से मेरा समस्त पापमल नष्ट हो गया है। हे देवि, जो कोई स्वभाव से तेरी स्तुति करता है, वह दुःख परम्परा का अनुभव नहीं करता। जो कोई प्रतिदिन तेरे मुख का ध्यान करता है, उसके लिए, हे देवि, तू (संसारसागर से तारने के लिए) नौका बन जाती है। मुझ दीन पर तू दया कर; और दुःखसागर में गिरती हुई मुझे बचा ले। हे देवि, मैं तुझ से कुछ नहीं माँगती। केवल एक वरदान के लिए मेरी तुझ से प्रार्थना है। हे भगवति, यदि सचमुच ही तू मुझे वर देती है तो, हे देवि, तू मेरी एक बात कर—"मेरा स्वामी रत्नाकर में चला गया है, वह जीवित है अथवा मृत्यु को प्राप्त हो गया?" (यह सुनकर) सुरेश्वरी बोली—"तेरा रमण जो यान परसे नीचे उतरा, वह तत्क्षण ही कनकप्रभा नाम की विद्याधर कन्या के हृदय पर चढ़ गया।"

15. देवी-द्वारा करकण्ड की कुशल-वार्ता

तब मोह के वशीभूत होकर कनकप्रभा उसे उसी क्षण तिलकद्वीप को ले गयी, और उसे अपने पिता को दिखलाया—"देखिए तात! मैंने इस दिव्यचक्षु पुरुष को सागर में पाया है। ऋषियों ने कहा था कि यही मेरा स्वामी होगा, जैसे कि लक्ष्मी ने विष्णु को (सागर में) पाया था।" विद्याधर ने उसके अनुराग को जानकर उत्सव से उसका विवाह कर दिया। फिर करकण्ड ने एक दिन अपने श्वसुर के वैरी का शीघ्र ही नाश कर डाला। जो सज्जन पुरुष पराया भोजन करता है, वह उसका उपकार करे, इसमें आश्चर्य ही क्या है? "जो कोई कनकप्रभ के वैरी को मारेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा, अन्य किसी से क्या?" इस भविष्य वाणी को मानकर विद्याधरों ने आदरपूर्वक तुरन्त करकण्ड की सेवा स्वीकार कर ली। उन्होंने अनुराग से अपने दोनों हाथ जोड़कर और सिर नवाकर प्रयत्नपूर्वक उसका अनुसरण किया। वहाँ जब ऐसा कोई विद्याधर न रहा जिसने उसकी सेवा स्वीकार न की हो।

16. देवी का रतिवेगा को धर्मोपदेश

पद्मावती देवी ने कहा—"हे बहन, तेरे रमण ने जो साहस किये हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है? उसने अनंगलेखा को भी विवाह लिया है, जो मानो कामरूपी किरात की रेखा (शोभा) ही है। फिर उसने लीलापूर्वक चन्द्रलेखा का भी परिणय किया है, जो मदन की सहोदरी के समान दिव्यदेह है। उसने सुन्दर चारित्र और चित्तवती कुसुमावली तथा सुवर्णकान्ति रत्नावली का भी परिणय किया है। और भी सात-सौ कन्याएँ उसने विवाह ली हैं। मैंने तुझे बात कह दी। अतः अब तू शोक का निवारण करके धर्म का पालन कर। तुझे निर्दोष रूप में करकण्ड मिलेगा। अतिशीघ्र प्रचुर द्रव्य लेकर तू निरन्तर भव्य दान दे।" यह सुनकर रतिवेगा ने कहा—"क्या सागर में गया हुआ मनुष्य फिर लौटकर आता है?" तब भट्टारिका देवी ने उत्तर दिया—"तू मेरे वचन में संशय क्यों करती है? तू तो कनक व अमरतेज से सम्पन्न जिनवर का प्रतिदिन संस्मरण कर।"

इति मुनि श्री कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पंचकल्याणविधान-कल्पतरुफल सम्पन्न करकण्ड-महाराजचरित्र में करकण्ड का विद्याधर कन्याओं से विवाह-लाभ नामक सातवाँ परिच्छेद समाप्त।

सन्धि—8

1. वियोगियों के पुनर्मिलन का उदाहरण

रतिवेगा बोली—"हे देवि, सुन। मैंने तेरा सुहावना वचन अपने ध्यान में लिया। अब तू कृपा करके मुझे यह तो कह कि क्या कोई गया हुआ नर फिर वापस आया है?" यह सुनकर भट्टारिका ने, जिसका मन पाप से लिप्त नहीं था ऐसी उस रतिवेगा से कहा—"हे सरलचित्त, जिननाथ के चरणों की परमभक्त, सुन्दरि, सुन। मैं तुझे स्नेह से अरिदमन राजा का चरित्र सुनाती हूँ। यहाँ अवन्ति नाम का देश है; मानो स्वर्ग का एक टुकड़ा टूट कर आ पड़ा हो। वहाँ एक नयनों को प्यारी उज्जैनी नाम की नगरी है, जहाँ सूर्य की किरणें प्रवेश नहीं कर पातीं। वहाँ प्रसिद्ध, प्रवर तेजस्वी, गुणनिधान, अरिदमन नाम का राजा था। उसकी विमला नाम की भामिनी थी, जो नयनरम्य, आसन्नभव्य व क्षीणकर्म (निष्पाप) थी। उसका मन्त्री लोगों का स्नेहभाजन तथा राजा का विश्वासपात्र वरदत्त नाम का था। इस मन्त्री की सुन्दर घोड़ी नगर के बाहर चरने गयी। काम से व्याकुल उसे देखकर, तुरन्त ही पर्वत के एक तुरंग ने उसके साथ रमण किया।

2. राजमन्त्री की घोड़ी और उसका बछड़ा

घोड़ी पट्टण में लौट आयी। मन्त्री ने देखा कि वह सर्वलक्षणसम्पन्न गर्भिणी हो गयी। अतएव उसने उसकी खूब रक्षा की, अपने घर ही रखा और चिकना घास-दाना चराया। फिर एक सुन्दर सुगन्धपूर्ण (शुभ) दिन उसके एक शोभनीय वायुवेग किशोर (बछेरा) उत्पन्न हुआ। वह नीलवर्ण, पुष्ट, मुख में बाँकुड़ा, मध्य में कृश तथा उर में और पिछले भाग में विस्तीर्ण था। वह लम्बी फुक्कार करता तथा रौद्र हींस छोड़ता था, और धुर्य (खूब चलने वाला-जोतने योग्य) था। उसका तालु ताम्रवर्ण था, और वह आँखों से चंचल था। उसकी रोमावली सूक्ष्म थी, और कानों का परस्पर संसर्ग हो जाता था। थोड़े ही दिनों में वह बड़ा हो गया। मन्त्री के चित्त

को वह अत्यन्त भाया। उसके तेज को सूर्यताप, तथा वेग को वायु भी नहीं पाते थे। वह जब भूमिगृह (घुड़साल) में बाँधा हुआ रहता था, तब एक सूआ उसे स्वच्छन्द भाव से देखा करता था। (इस कडवक में सर्गिणी छन्द का उपयोग किया गया है)। जबतक वह विजयशाली पहाड़ी घोड़े का पुत्र गर्भ में स्थित था, तब-तक कोई एक खेचर सूए का रूप धारण करके उसे दिन-प्रतिदिन देखा करता था।

3. सुए के रूप में खेचर

वह खेचर एक पर्वत के मस्तक पर एक धैर्यवान् सूआ हुआ। वह उड़ता तथा अपनी कान्ता के स्नेह में लगकर सैंकड़ों भोगों-सहित सुख से रहता हुआ दीर्घ काल तक भोग भोगता रहा। तब एक धर्मवान्, सुशील, मत्तकुंजर के समान लीला करता हुआ, प्रबल और दीर्घ भुजाओं से युक्त, एक सुन्दर गोधननाथ (ग्वाला) उस वन में आया। वह जब वहाँ बैठा हुआ था, तब उस सूए ने अपने सगुण नेत्रों से उसे देखा, और चित्त को हरण करने वाली स्वच्छन्द कोमलवाणी से कहा—"हे गोपाल, तू मुझे तुरन्त नगर में ले चल, और पाँच-सौ सुवर्णमुद्राओं में मुझे नरेश्वर के हाथ बेच दे।" (यहाँ चित्रध्वजा छन्द है।)

4. कुट्टिनी का सेठ से विवाद

यह वाणी सुनकर और समझ कर वह ज्ञानी गोप, नीति से सुशिक्षित, तथा मन से माननीय सूए-सहित झटपट नगर में आया। वहाँ दृष्टि डालने पर एक सेठ दिखायी दिया। उस सुहृद् सेठ को कुट्टिनी गणिका ने पकड़ रखा था। वह अबला कोमल शब्दों में उससे कह रही थी—"तू राजा है, अज्ञानी मत बन। तेरा ज्येष्ठ पुत्र स्वप्न में, अपने घर में स्वच्छन्द भाव से विराग (स्नेहरहित) तथा शान्तभाव से युक्त सोती हुई मेरी पुत्री के साथ सोया है। (यहाँ सोमराजी छन्द है) अतएव तू उसे द्रव्य दे। अपना गर्व छोड़।" इस बात का भारी कोलाहल हाट (बाजार) के बीच फैल रहा था; और उस पकड़े गये वणिक्वर को कोई मनुष्य छुड़ाने में समर्थ नहीं हो रहा था।

5. स्वप्न का स्वभाव दर्पण-प्रतिबिम्बवत्

तब वह सुन्दर धीर सूआ वात्सल्यभाव से बोला—"हे सेठ, मुझे बात तो बतला, जिससे मैं इस युद्ध का निवारण कर सकूँ।" तब सेठ ने उस क्रन्दन (युद्ध के कोलाहल) का कारण कहा। तब ज्ञानसागर को पहुँचे हुए (महाज्ञानी) सुए ने सेठ से कहा—"इस सुसज्जित चाची को द्रव्य दो।" इस दिव्य वाणी को सुनकर सेठ के चित्त में लज्जा उत्पन्न हुई। किन्तु ज्योंही सेठ द्रव्य लाकर, सब कुट्टिनी को देने लगा, त्योंही नीतिमार्ग के ज्ञायक सूए ने कहा—"सेठ, एक आदर्श (दर्पण) भी लाओ जिससे मैं इसे अपूर्व द्रव्य दूँ।" सेठ दर्पण भी ले आया। सुए ने तत्क्षण दर्पण के बीच उस द्रव्य का बिम्ब प्रकट करके कुट्टिनी से कहा—"चाची, ले इस द्रव्य को।" तब वह गूढ़चित्त व समझदार कुट्टिनी अपनी इच्छा से बोली—"रे भगोड़े सुए, कहीं प्रतिबिम्ब भी लिया जाता है?" यह सुनकर सूए ने प्रत्युत्तर दिया—"हे चंचले, कहीं स्वप्न में देखी वस्तु भी ग्रहण की जा सकती है?"।

6. सुआ राजद्वार पर पहुँचा

जब सूए ने इस प्रकार से कुट्टिनी को हरा दिया, तब सेठ न्यायपूर्वक सूए से बोला—"इस सुवर्ण-सम्पत्ति को सरेखो (गिनो) और इसे लेकर जो भावे सो करो।" यह सुनकर सुए ने ऐसी बात कही, जिससे वणीश्वर चित्त में चमक उठा। वह बोला—"हिरण्यका मैं क्या करूँगा? मैं तो सुसज्जन लोगों का चित्त हरण करता हूँ।" सूए के विशुद्ध भाव को सुनकर सेठ ने उस सुवर्णराशिका भारी दान उस अहीर को दे दिया। फिर सूए ने अहीर से कहा—"चलो, मुझे लेकर राजद्वार पर पहुँचाओ।" तब जो सूआ बुद्धि-सम्पत्ति का घर हो रहा था, उसे लेकर ग्वाल एक क्षण में राजद्वार पर पहुँचा। सूए ने द्वारपाल से कहा—"सुन्दर मोतियों की माला पर अपना चित्त प्रसारित करने वाले, हे सरल मित्र, लो मेरी बात अपने राजा के आगे जाकर कहो। मैं राजा के पूर्णचन्द्रमा के तुल्य, नयनानन्ददायी सुख को देखना चाहता हूँ।"

7. सुए की कपट-कहानी

प्रतीहार ने जाकर राजा से कहा—"हे देवदेव, बाहर एक सूआ आया है।" यह सुनकर उस कमलमुख राजा ने उसे अपने पास बुलवाया और उससे संभाषण किया। तब सूए ने अपना पैर उठाकर आशीर्वाद-द्वारा राजा का अभिनन्दन किया—"हे हस्तिशुण्ड के समान दीर्घबाहु नरपति, चिरजीवी हो; जब तक गंगा का प्रवाह चल रहा है।" मनमें सन्तुष्ट होकर राजा ने सूए से कहा—"तुम कौन हो, और यहाँ क्यों आये हो? ठीक-ठीक बतलाओ।" तब उस नभचर पक्षी ने यह बात स्वीकार की, और एक बड़ी कपट-कहानी रची। फिर सूए ने कहा—"हे नरपति, पहले एक सेमल वृक्ष में पाँच-सौ सूए रहते थे। मैं भी वहीं रहता था। मैंने उन सब से कहा—"लो, इस बेल को काटो। उन्होंने ललक से उस पर बार-बार आघात किये। अभी वह बेल उनके द्वारा पूरी कट भी न पायी थी, क्योंकि वह बढ़कर उस वृक्ष पर खूब चढ़ गयी थी, तभी गुंजा के समान लाल आँखों वाला कृष्णवर्ण भिल्लों का एक समूह वहाँ आ पहुँचा। उन्होंने क्षणमात्र में वृक्ष पर चढ़कर सूओं को उनके घरों (घोसलों) से निकाल कर अपने जाल में समेट लिया। तब हम सब सूए फँस गये। तब अपने मन में मैंने एक उपाय सोचा।

8. सूए ने राजा के मन्त्री के घोड़े की चाह उत्पन्न की

"मैंने सब सूओं से कहा—क्षण-भर के लिए मर जाने का कपट (बहाना) बनाकर पड़े रहो। भील ने चढ़कर सबको देखा और उन्हें निश्चेष्ट जानकर नीचे डाल दिया। तब वे उड़-उड़कर दशों दिशाओं में चले गये। मैं चलकर एक तापसों के बाड़े में पहुँचा। वहाँ मैंने सकल शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया, तथा एक पर्वत की चोटी पर सुखपूर्वक रहने लगा। वहाँ मैंने एक पहाड़ी घोड़े को देखा, जिसने कामवासना से एक घोड़ी का संग किया। उससे उस घोड़ी ने एक अति सुन्दर बछेरे को जन्म दिया, जिसका पृथ्वी पर पैर ही नहीं लगता। मुझ विद्याधर ने यह जान लिया, और यह बात स्नेह के परवश होकर तुझे कह दी। वह घोड़ा मन्त्री के घर

चारा चर रहा है।" सूए की यह बात सुनकर, राजा तुरन्त वहाँ गया। उस नरेश्वर ने उस (मन्त्री) के घर जाकर उससे कहा—"मुझे तेरे रत्नों और माणिक्यों से कोई काम नहीं, मेरे मनोरथ तो तेरे तुरंग से पूरे होंगे।"

9. घोड़ा राजा को ले उड़ा

उस महन्त ने अपने हृदय में दुःख अनुभव करते हुए वह घोड़ा राजा को अर्पित कर दिया। उसे लेकर राजा अपने महल को गया और सुन्दर घोड़े पर पलाण खिंचवाया। नरेश्वर सूए के साथ उस पर चढ़ा और उस दृढ़भुजावाले ने उसको फेरा (चक्कर दिलाया)। सूए ने राजा को रोका—"हे देव, इसे चाबुक नहीं मारना, नहीं तो वह अपना शान्तभाव छोड़ देगा।" राजा ने कौतूहलवश सूए की आँख बचाकर घोड़े को एक कोड़ा मारा। तुरंग तुरन्त ही आकाशतल में उड़ने लगा और सागर को लाँघकर दूर चला गया। राजा ने श्रान्त होकर सूए से कहा—"हे बन्धु, स्वच्छ पानी कहाँ मिले?" तब सूए ने आकाश में उड़कर स्थिरभाव से पानी का अवलोकन किया। फिर लौटकर सूए ने राजा से कहा—"लो, तुरन्त रत्नाकर को चलिए।" सागर में जाकर उन्होंने वहाँ सौ कन्याओं को रमण करते हुए देखा। उस स्थान पर राजा ने सूए के वचनानुसार देवकी भले प्रकार अर्चना की।

10. राजा की रत्नमाला से भेंट

वह कन्याओं का समूह भी देवों का स्नान और अर्चना करके अपने घर गया। सूआ राजा को भी तत्क्षण उन्हीं के पीछे-पीछे ले गया। छोहार द्वीप में पहुँच कर राजा उन कन्याओं के घर पहुँचा। उनके चित्तों को परस्पर मिलाते हुए, सूए ने तत्क्षण राजा से कहा—"हे नरपति, तू इस कंचन के समान दिव्यदेह रत्नलेखा का परिणय कर ले। बहुत पहले ही आर्य मुनीन्द्रों ने कह रखा है कि इसका परिणय तुम्हारे-जैसे पुरुष-द्वारा ही होगा।" यह सुनकर नरेन्द्र ने उस कमलसमान दीर्घनयना कन्या से कहा—"हे सुन्दरि, यह सूआ जो बातें कह रहा है, वे तू पसन्द करती है न?" यह सुनकर उन कुमारी ने उत्तर दिया। अनुराग से उसके वचन लड़खड़ा रहे थे।

वह बोली—"मैंने तो अपने मन में आपकी सेवा का भाव धारण कर लिया है। हे नरेश्वर, सूए का वचन कैसे टल सकता है?"

11. राजा की जलयात्रा

उसका ऐसा सुहावना वचन सुनकर राजा ने तुरन्त ही उसका परिणय कर लिया और वहाँ स्नेह से सहस्त्रों भोग भोगे। फिर एक दिन उस कुशल कन्या ने परमस्नेह प्रकट करते हुए कहा—"हे नरपति, मैं तुम्हारा घर देखना चाहती हूँ।" उसका वह शोभनीक वचन सुनकर राजा ने एक सलिलयान (नौका) सुसज्जित कराया। उसे मनोहर रत्नों से भरा और सुन्दर ध्वजपटों से शोभायमान किया। सूए, घोड़े और गृहिणी के साथ उस पर नरेन्द्र ऐसा शोभायमान हुआ जैसे सुरेन्द्र। वह सलिलयान रत्नाकर के वायु के बल से चलता हुआ द्वीपान्तर में पहुँचा। दिन अस्त होते वह यान एक ऊजड़ द्वीप से जा लगा। तब राजा ने अपने मन में चिन्ता की और फिर सूए से कहा—"हे मित्र, यहाँ रात्रि कैसे निकाली जायगी?" तब सूए ने उत्तर दिया—"हे नृप, बहुत असावधान होकर मत सोइए।"

12: नौका-भंग और पति-पत्नि वियोग

तब घोड़ा, नारी, सूआ और राजा—इन चारों जनों ने स्थिर मन से चार पहरे नियत किये। राजा के पहरे में चोर जल्दी से घोड़े-सहित सलिलयान को हर ले गये। रवि उदय होने पर जब राजा ने देखा, तब उसे अपनी नौका व घोड़ा दिखायी नहीं दिया। तब राजा ने यह बात सूए से कही—"न जाने नौका किस मार्ग से चली गई?" सूए ने मन में खेद धारण करते हुए तुरन्त राजा से कहा—"खड (लकड़ी) काटकर, तुरन्त उन्हें बाँधो, जिससे तुम सरलता से रत्नाकर को तर सको।" सरल स्वाभावी राजा नौका की रचना करके अपनी गृहिणी तथा सूए के साथ उस पर चढ़ गया। किन्तु समुद्र की लहरों से नौका के बन्धन टूट गये और राजा देशान्तर में भटक गया। तब सूआ उड़कर एक वटवृक्ष पर जा पहुँचा, राजा को समुद्र की लहरों ने कोंकण में जा डाला तथा उसकी मनोहर गृहिणी विधिवश खम्भायत पट्टाण में जा पड़ी।

13. रत्नलेखा खंभायत की कुट्टनी के घर

खम्भायत में रत्नलेखा को लम्बझलम्बा नाम की विलक्षण कुट्टनी ने देखा। वह उसे अपने घर लिवा ले गयी और उस सुललिता ने उसकी जल की गन्ध का निवारण किया। फिर लम्बझलम्बाने उस भोली महिला से कहा—"बिना ग्रहण (प्रेम-बन्ध) के वेश्या शुद्ध नहीं होती।" यह सुनकर उस सुन्दरी ने कहा—"हे माता, जो कोई मुझे जूए में जीत सकेगा, वही मेरे साथ सो सकता है।" फिर उस महिला ने जूए में अनेक पुरुषों को जीत लिया और उनका द्रव्य लेकर उस वेश्या को दे दिया। फिर उसने दही और भात आँगन में बिखरा दिया। समुद्र के वटवृक्ष में रहने वाले सूओं का पुञ्ज उस दही-भात को चुनकर वापिस जब उसी वटवृक्ष पर गया, तब उस राजा के सूए ने उनसे पूछा—"तुम कहाँ गये थे, जहाँ से, हे मित्र, तुम यह भोजन लेकर आये?" तब उन सूओं ने उसे सब बात कही। तब उस सूए ने पुनः उनसे बात कही—"तुम मुझे वहाँ ले चलो, जहाँ बालिका ने भात फैलाया है।" तब वे उसे तुरन्त वहाँ ले गये और उसने वह वेश्या का घर देखा।

14. रत्नमाला के द्यूतकौशल की ख्याति राजा के कानों पर

उस सूए ने भात चुनते हुए खूब आँसू बहाये। यह देखकर उसकी स्वामिनी बाला ने अपना पुराना सूआ पहचान लिया और नाम लेकर उसे बुलाया—"अरे भाई सूए, यहाँ आओ। तुम्हारा स्वामी अब कहाँ है?" सूए ने उत्तर दिया—"नहीं जानता, देवि, कि राजा कहाँ गया?" यह सुनकर उस सुन्दरी के मनमें विराग बढ़ा। सूए ने उसे रोका—"हे देवि, विषाद करने से शुद्ध भाव नष्ट हो जाता है। हे मृगाक्षी! मेरा चित्त कहता है कि स्वामी, लक्ष्मी प्राप्त करके अवश्य मिलेगा।" सूए की स्नेहपूर्ण वाणी सुनकर वह विशुद्ध भाव से प्रसन्न रहने लगी। उसकी कीर्ति समुद्र प्रमाण बढ़ गयी। उसने सुन्दर मोतियों की मालाओं से युवकों को बाँध लिया। यह बात अरिदमन राजा से किसी ने कही कि खम्भायत पट्टण में कोई नर सारापांसा खेलना नहीं जानता। कोई भी वहाँ की एक बालिका को नहीं जीत पाता।

15. राजा-रानी की द्यूतक्रीड़ा और पहिचान

यह सुनकर राजा अरिदमन अपना मन स्थिर करके तत्क्षण खम्भायत को गया। वहाँ जाकर वह तुरन्त टेण्टा (जूआघर) में गया वहाँ समस्त जुआड़ियों के मन को हरण करने लगा। उनके बीच बैठा हुआ वह ऐसा शोभता था, मानो उसने पूर्णचन्द्र की लीला धारण की हो। उस राजा ने वहाँ आदरपूर्वक सात सौ सुवर्ण जीत डाले। फिर वह भाँड़ों और नगोड़ों को धन बाँटता हुआ उस धन-लम्पटा वेश्या के घर गया। उसने जिसकी जूए में कीर्ति प्रसिद्ध थी—उसको ग्रहण (आमन्त्रण) दिलवाया। फिर आप स्वयं रात्रि में वहाँ गया, जहाँ सूए के साथ वह रमणी बैठी थी। उसने उससे कहा—"लो सुन्दरि, हम मदनदूत के समान सारिद्यूत खेलें।" राजा ने उसे जीत लिया, जिससे वह सुन्दरी मन में घबरा उठी। किन्तु जब उसने जान लिया कि वह उसीका पति है, तब उसी क्षण उसके अंग से अपने अंग का आलिंगन किया।

16. देवी का रतिवेगा को सम्बोधन—जैसे वे मिले तैसे तुझे तेरा पति भी मिलेगा

जब राजा अरिदमन रत्नलेखा के साथ वहाँ खम्भायत में रह रहा था, तब कोई एक टक्क (पंजाब देशवासी) घोड़े लेकर वहाँ आया। राजा ने उन घोड़ों के बीच निहार कर देखा और उस टक्क के साथ मोल-भाव किया। राजा ने नाम लेकर घोड़े को बुलाया। तब घोड़े ने भी मुँह मोड़कर राजा की ओर देखा। जो कुछ कम से कम मोल ठहरा, उतना सुवर्ण देकर राजा ने घोड़े को खरीद लिया। इस प्रकार दुरवस्था को प्राप्त उन स्त्री, सूआ, राजा और अश्व, इनका फिर मिलाप हो गया। वे सुख भोगते हुए वहाँ रहे; और फिर वे अपने देश को चले आये। पद्मावती देवी ने रतिवेगा से कहा—"हे बालिके, मैंने तुझे कह सुनाया कि किस प्रकार वह राजा समुद्र में पड़कर भी घर लौट आया। जिस प्रकार वह महागुणवान् राजा आ गया, उसी प्रकार, हे मुग्धे, तेरा कान्त भी तुझे मिल जायेगा।" रतिवेगा को इतना सब कहकर वह सर्वांग से निरुपम, कोमल व चन्द्रानना भट्टारिका पद्मावती देवी, तुरन्त निवास-स्थान को चली गयी और देवों में जा मिली।

17. रतिवेगा और करकण्ड का पुनर्मिलन

तब यहाँ कमल के समान कोमलमुखी रतिवेगा ने उदास मन होते हुए भी, जो कुछ वचन देवी ने कहा था, उसका क्षणार्द्ध में अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया। उस अभिनव मृणाल के समान सुन्दरांगी बालिका ने तुरन्त प्रचुर धन देकर समस्त दुःखी दरिद्र लोगों में बाँट दिया और भूखे लोगों को अच्छा भोजन कराया। इस प्रकार वह वहाँ भक्ति करती हुई, मनमें जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण करती हुई, रहने लगी। वह रत्नावली नामक उपवास विधि के भार से झुक रही थी; मुक्तावली रूपी मोतियों की माला धारण करती थी; कुसुमाञ्जली रूपी पुष्पों से चमकती थी; पल्योपम विधि-रूपी सार्थ से गमन करती थी, तथा वसुधारा नामक विधान में अपना मन स्थापित करती थी। फिर एक दिन वह कनकप्रभा नाम की विद्याधर-कन्या करकण्ड को वहाँ ले आयी। रतिवेगा ने अपने पति को देखा, तब हर्ष से उसकी आँखों में अश्रुजल भर आया। वह कृशांगी ऐसी चमक उठी जैसे कृष्णवर्ण सजल मेघ बिजली से चमक उठाता है, अथवा मयूरी सजल मेघ को देखकर नाच उठती है।

18. करकण्ड का द्रविड़ राजाओं से युद्ध और उनकी पराजय

फिर रतिवेगा ने कनकप्रभा का सब प्रकार से बड़ा आदर किया। परिजनों में तथा विस्मित मन सामन्तों और मन्त्रियों में पोरितोष बढ़ा। वहीं कुछ दिन आनन्दपूर्वक रहकर करकण्ड राजा वहाँ से चल पड़ा। महीतल पर भ्रमण करते हुए, तथा मन में मात्सर्य (क्रोध) भाव रखते हुए, वह द्रविड़ देश में पहुँचा। वहाँ चोड, चेर व पाण्ड्य राजाओं से किसी ने क्षणार्द्ध में जाकर कहा—"हे देव, तुम्हारे ऊपर बैरी चढ़ आया है। ऐसा कीजिए जिससे वह दूर से ही चला जाये।" यह सुनकर वे राजा क्षणार्द्ध में परस्पर मिले और फिर जाकर करकण्ड से भिड गये। हाथी हाथियों से, रथ रथवरों से, हय तुरंगों से तथा पुरुष पुरुषों से भिड़ने लगे। वे रोष से होकर दारुण रीति से युद्ध करने गले। ध्वजा, दण्ड, छत्र तथा सिर कट-कटकर

पड़ने लगे। योद्धा अन्तरंग में ललकते और प्रस्खलित होते। यश के लोभी महाभट पुनः परस्पर मिलते। इस प्रकार उन द्रविड़ राजाओं ने ऐसा महान् संग्राम किया कि जिससे गगनांगन में सुरवर भी डर उठे। करकण्ड ने उन राजाओं को रण में पकड़ लिया और उनके सिर पर के मुकुटों को अपने चरणों से रौंदा। किन्तु मुकुटों के अग्रभाग पर जिन-प्रतिमा को देखकर करकण्ड को बहुत दुःख उत्पन्न हुआ।

19. करकण्ड का पश्चात्ताप व तेरापुर का आगमन

करकण्ड पश्चात्ताप करने लगा—"हाय हाय, मुझ मूढ़ने यह क्या किया? जिन बिम्ब को भी चरण से आहत किया। इस पाप के फल से न जाने कौन-सी दुर्गति में मेरा निवास होगा?" इस प्रकार मन में दुःखी होकर तथा अपनी आँखें मींचकर उसने उन चोड राजाओं को छोड़ दिया और कहा—"जो मैंने संग्राम में तुम्हें पराजित किया, व जो अपने चरणों से मुकुटों को रौंदा, यह सब मुझे अपना बन्धु समझ कर क्षमा करो, और अपने पैतृक-निवास देश (जन्मभूमि) को वापिस लो।" यह सुनकर उन द्रविड़ राजाओं ने उत्तर दिया—"अब आपकी सेवा हमारे पुत्र करेंगे।" चम्पाधिप को ऐसा कहकर फिर उन्होंने क्षणार्द्ध में वनवास का अनुसरण किया। वे ललितगात्र नृप अपने शरीर को तृण के समान गिनकर तपस्या करके स्वर्ग के अग्रभाग को प्राप्त हुए। करकण्ड वहाँ से निकलकर तेरापट्टन के सम्मुख गया और वन के उस प्रदेश में पहुँचा, जहाँ सुन्दरी मदनावली हरी गयी थी।

20. मदनावली की पुनः प्राप्ति और चम्पापुरी-आगमन

वहाँ जब वह आदरपूर्वक रह रहा था, तब उस खेचर ने मदनावली को लाकर अर्पित किया। उस विद्याधर ने तुरन्त ही अपने हृदय से अपना भवान्तर कह सुनाया। मैं पूर्व भव में सर्प था। भ्रमण करता हुआ मैं तुम्हारे घर में आ पहुँचा। वहाँ मैंने पिंजरे में स्थित परेवी से युक्त परेवे को देखा। मैंने उसका पैर पकड़ लिया। वह तड़फड़ाने लगा। उसी समय तू घूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा। तूने उसे तुरन्त छुड़ा

लिया और करुणापूर्वक उसे णमोकार मन्त्र दिया। उसके फल से वह परेवा खेचर हो गया। मैं तेरी आँख बचाकर वहाँ से भाग गया। एक दिन मैं एक घोड़े के खुर से कुचला गया। उस समय एक मुनिवर ने मेरे कान में णमोकार मन्त्र का जाप दिया। उसके फल से मैं खेचर हो गया, और यहाँ आने पर मैंने तुझे देखा। उस पुराने रोष के कारण मैंने तेरी गृहिणी का हरण किया। ले, मैंने तुझे यह गुप्त बात कह दी। अब मैं पूर्णरूप से तेरा किंकर हूँ। इतना कहकर उस खेचर ने अपना सिर नवाकर करकण्ड के चरणों को नमस्कार किया। फिर बोला—"हे देव, मैंने जो अपराध किया, उसे क्षमा कीजिए। मैं अब कभी तुम्हारी सेवा नहीं छोड़ूँगा।" करकण्ड नृपति ने उस खेचर का दान से सम्मान करके व पृथ्वी को साध कर (वशीभूत करके) चम्पा को गमन किया। वहाँ वह राज्य करते हुए बहुत दिनों तक अपने कनकमय अमर प्रासाद में रहा।

इति मुनि श्री कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पञ्चकल्याणविधान-कल्पतरु-फलसम्पन्न करकण्डमहाराज-चरित्र में करकण्ड का पृथ्वीसाधन तथा चम्पापुरी-प्रवेश नामक अष्टम परिच्छेद समाप्त।

सन्धि—9

1. चम्पा के उपवन में शीलगुप्त मुनिका आगमन

बुधजनों वेष्टित चम्पाधिप जब सुख व लीलापूर्वक वहाँ रह रहा था, तब जहाँ सभा में राजा बैठा था वहाँ उद्यान का अधिपति आया। करकण्ड राजा ने उससे पूछा—"तू किस कार्य से आया है, सो कह।" उसने कहा—"हे नरेश्वर, जिसका लोग अपने मन में ध्यान और स्मरण करते हैं, जिसके दर्शन से सिंह भी उपशान्त हो जाता है, और हाथी के मस्तक का आग्रह नहीं करता; जिसके दर्शन से परस्पर वैर धारण करने वाले प्राणी भी अपने मन में मार्दव भाव ले लेते हैं; जिसके दर्शन से कोई अणुव्रत ले लेते हैं और जिनेन्द्र को छोड़कर अन्य किसी में मन नहीं देते; कोई गुणव्रत ग्रहण कर लेते हैं और पुनः अन्य शिक्षाव्रत ले लेते हैं; जैसे धर्मालय ही हों, अथवा संयम के घर, या मानो मुनिराज के वेश में जिनवर ही हों—ऐसे ज्ञानयुक्त शीलगुप्त नाम के प्रसिद्ध मुनिवर उपवन में आये हैं। यह वचन सुनकर करकण्ड अपने सिंहासन से तत्क्षण उठ खड़ा हुआ तथा हाथ जोड़कर व मन में मुनिवर के पदों का स्मरण करते हुए सात पग आगे बढ़ा।

2. नर-नारियों का मुनि-दर्शन के लिए उत्साह

फिर तुरन्त ही राजा ने सन्तुष्ट होकर आनन्दभेरी दिलवायी। उस भेरी का नाद सुनकर सौभाग्यशाली भव्य लोग क्षणार्द्ध में आ मिले। कोई ललितदेह मानिनी मुनिराज के चरण-कमलों में स्नेह बाँधकर चल पड़ी। कोई नुपुर के शब्दों से झुन-झुन ध्वनि करती हुई चली, मुनि के गुणों का स्तवन कर रही हो। कोई अपने साथ चलते हुए रमण की ओर ध्यान न देकर स्वयं हृदय से मुनिराज के दर्शन की अभिलाषा कर रही थी। कोई अक्षत व धूप से थाल भरकर, बालक को ले, बड़े वेग से चल पड़ी। कोई खूब सुगन्ध उड़ाती हुई जा रही थी, मानो विद्याधरी महीतल पर शोभित हो रही हो। कोई पूर्णचन्द्रमुखी हाथ में कमल लेकर चल पड़ी। इस प्रकार आनन्दभेरी का स्वर सुनकर सभी भव्यजन शीघ्र वहाँ आ मिले।

3. शोक-व्याकुल स्त्री का दृश्य

जिनेन्द्रधर्म में अनुरक्त, मुनीन्द्र के चरणों का भक्त, स्वर्ण समान कान्तिवान्, कमलपत्र के समान नेत्रवान्, प्रलम्ब व पीनभुजशाली, सब शास्त्रों का ज्ञाता एवं विशुद्ध व सुगन्धित-गात्र राजा करकण्ड जब बाजार में पहुँचा, तब उसने वहाँ देखा कि एक कोई दुःखी पुरवासिनी मूढ़भाव से हाय हाय कर रही है; अपनी कुक्षि को दोनों और कूट रही है; खूब आँसू बहा-बहा कर रो रही है; लोगों के चित्त को दुःख से संकुलित और व्याकुल कर रही है; बावला भेष धारण किये है; मूर्च्छा से डोल रही है; व भूमि पर गिर-गिर पड़ती है। लोगों पर प्रभाव डालने वाले मदिरा-पान से उन्मत्त ध्वनि के समान उस स्वर को सुनकर करकण्ड ने किसी मनुष्य से पूछा—"यह बेचारी नारी क्यों रोती है; और क्यों विलाप करती हुई हृदय में दुःख करती, एवं अपने-आप विह्वल हो-होकर मर रही है?"

4. करकण्ड का वैराग्यभाव

तब उस मनुष्य ने राजा से बात कही—"जिस कारण से वह ऐसी दुःखातुर हुई है; उस कारण को, हे स्वामिसार, सुनिए। सदाकाल भोग भोगते हुए उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु विधिवशात् उसे इसके पास से यमराज छुड़ा ले गया। इसी से यह महिला दुःखी होकर रोती है, और स्नेह से बँधकर आत्मोत्सर्ग कर रही है। वह अपने पुत्र का साथ नहीं छोड़ती और न उसे अपने मन से भुलाती है।" उस वचन को सुनकर राजाधिराज करकण्ड, संसार के ऊपर विरक्त-भाव होकर कहने लगे—"धिक्-धिक्, यह मर्त्यलोक बड़ा असुहावना है। शरीर का भोग ही मानव के दुःख का कारण है। यहाँ समुद्र के तुल्य महान् दुःख है, तथा भोगों का सुख मधुबिन्दु के समान अत्यल्प। हाय, जहाँ मानव दुःख से दग्धशरीर होकर बुरी तरह कराहता हुआ मरता है, ऐसे संसार में निर्लज्ज व विषयासक्त मनुष्य को छोड़, कहो और कौन प्रीति कर सकता है?"

5. अनित्य-भावना

कर्मवश जो उदर में आकर बैठा, उसे यमराज अपने पुर में ले गया। जिस बालक को लालापाला, उसे विधि ने अपने नगर को चला दिया। जो नवयौवन में चढ़ा, उस प्रवर मनुष्य को भी यम लेकर चल देता है। जो बूढ़ा होकर सैकड़ों व्याधियों से पीड़ित है, वह तो फिर यमदूतों द्वारा परिमर्दित होने वाला है। बलभद्र के साथ अतुल बलशाली नारायण को भी विधि छल करके ले भागा। जिन चक्रवर्तियों ने छह खण्ड वसुन्धरा को जीता, उन्हें भी काल ले उड़ा। जो विद्याधर, किन्नर, खेचर, सुर व देव हुए, वे बलवान् होते हुए भी यमके मुख में जा पड़े। नागेन्द्र के सदृश अमरेन्द्र भी को यम ले जाता है; वह किसी को छोड़ता नहीं। न वह श्रोत्रिय ब्राह्मण को बचने देता, और न तपमें स्थित तपस्वी को छोड़ता। उससे न धनवान् छूटता और न निर्धन। जैसे मानो कानन में दावानल भभक उठा हो (ऐसी संसार की अनित्य दशा है)।

6. अनित्य-भावना

दैव ने जिस देह का निर्माण किया है, मानव का यह लावण्य भी स्थिर नहीं है। जो मनोहर नवयौवन पर चढ़ता है, उसे भी देव न जाने कहाँ जा पटकते हैं। शरीर में जो और गुण निवास करते हैं, वे सब भी न जाने किस मार्ग से निकल जाते हैं। यदि वे काय के गुण अचल होते, तो मुनि संसार से विरक्ति नहीं (होते) करते। गजकर्ण के समान लक्ष्मी कहीं स्थिर नहीं ठहरती; देखते ही देखते वह विनष्ट हो जाती है। जिस प्रकार पारा हथेलीपर रखते ही गल जाता है, उसी प्रकार नारी विरक्त होकर एक क्षण में चली जाती है। जिसकी भौंहें, नयन, वचन व गति सब कुटिल हैं, उस नारी को कौन सरल बना सकता है? जो छोड़ते समय न स्वजनों को गिनती और न इष्ट, वह नारी दुर्जन-मैत्री के समान चंचल और निकृष्ट होती है। जो वैराग्य-भाव को प्राप्त होकर इस अनित्य-अनुप्रेक्षा का ध्यान करता है, वह नर सुललित और मनोहर गात्र होकर देवों के विमान का आभूषण बनता है।

7. अशरण-भावना

रात्रि में विश्राम लेता और संग्राम में देवों का दमन करता। किन्तु जब आपत्ति आ पड़ती है और हृदय सो जाता है, तब उसकी कोई चेष्टा नहीं रहती। न वह उठता है, और न बैठता। चाहे गुफा में जा छिपो, चाहे सुरलोक का अनुसरण करो, या सुरगिरि पर जा चढ़ो, अथवा पिंजड़े में अपने शरीर को डाल रखो। चाहे बन्धु और मित्र हाथों में भाले लिये खड़े रहें। पुत्र बचाते रहें और मन्त्र-रक्षा करते रहें, या योद्धाओं का समूह घेरे रहे। किन्तु ये सब किसी को मृत्यु से नहीं बचा सकते। बलदेव, चक्रधारी नारायण, सुरेन्द्र, आकाशगामी खेचर, यम, वरुण, शेषनाग-कोई शरण नहीं हो सकता। जो कोई उस अशरण-अनुप्रेक्षा की प्रतिदिन अपने मनमें भावना करता है, उसके शरीर का सुरनारियाँ लालन करतीं और यथासमय उस सौभाग्यशाली के साथ भोग भोगती हैं।

8. संसार-भावना

संसार में भ्रमण करते हुए जीव को कौन-सा सुख होता है? वह नाना प्रकार के असुहावने दु:खों को ही पाता है। नरक-लोक में उसे उसके पूर्वभव के वैरी नारकी मारते हैं। वहाँ ऐसे बड़े-बड़े पाप भोगने पड़ते हैं, जो हृदय से सोचे भी नहीं जा सकते। परस्पर जाति-विरोधी तिर्यंचों के बीच उत्पन्न होकर, उनके द्वारा मुखबन्धन, छेदन, ताड़न व अंगफाड़न के दु:ख प्राप्त होते हैं। मनुष्यभव में मान धारण करता हुआ अपने मनमें सलबलाता और परिक्षीण होता रहता है। सुरलोक में पहुँचकर यह नष्ट-बुद्धि जीव दूसरों की ऋद्धि देखकर मन में खीझता रहता है। जिस प्रकार नट-नारी नाना रूप धारण करती है, उसी प्रकार यह जीव स्वयं नाना कलेवर धारण किया करता है। जिस मनुष्य ने भले प्रकार संसार के ऊपर अवलोकन किया, और महान् रत्नत्रय रूपी रत्न प्राप्त कर लिये उसे कहो, इस जग में क्या नहीं मिला?

9. एकत्व-भावना

जीव का ऐसा कोई सुसहायक नहीं है, जो उसे नरक में गिरने से बचा ले। सुहृद्, स्वजन, नन्दन व इष्ट भ्राता, ये जीव के जाते समय सहायक नहीं होते। स्वयं अपनी जननी या जनक, रोते हुए भी, जीव के साथ एक पैर भी नहीं जाते। धन भी एक पैर घर के बाहर साथ नहीं चलता। जीव अकेला ही धर्म व पाप का फल भोगता है। शरीर जलती अग्नि में गिरकर भस्म हो जाता है। जीव अकेला ही यम के घर को चढ़ता है। वहाँ नयन-निमेष (पल) मात्र भी सुख नहीं होता। वहाँ जीव अकेला ही दुःख का अनुभव करता है। असाध्य (दुःखपूर्ण) अहि, नकुल, सिंह आदि वनचरों के बीच अकेला जीव ही जाकर उत्पन्न होता है। सुरों, खेचरों व किन्नरों के सुन्दर ग्राम में भी जीव अकेला ही जब तक जीता है, भोग भोगता है। जो कोई अपने शरीर को शील से मण्डित कर इस एकत्व अनुप्रेक्षा का अनुसरण करता है, वह शरीर से मुक्त होकर सुख के निलय शाश्वत पद में अद्वितीय रूप से शोभायमान होता है।

10. अन्यत्व-भावना

गुणगणों के धारी मुनिराज ने फिर भाषण किया और जीव से जो सर्वथा भिन्न है, उसे बतलाया। जो सैकड़ों औषधों से परिपोषित किया जाता है, वह शरीर भी जीव से भिन्न है। बड़े-बड़े दीर्घ सुखकारी लोचन भी जीव से परिभिन्न हैं। वृक्ष के पल्लव समान चंचल यह जिह्वा भी जीव से दूर ही स्थित है। शरीर के स्पर्श, गन्ध व कानों के गुण तथा रूपऋद्धि, जीव से अतिभिन्न हैं। और भी जो गुण काय में आ मिलते हैं, वे सब जीव से भिन्न होकर चले जाते हैं। जो भी काय के बहुत से स्थूल व अतिसूक्ष्म गुण हैं, वे भी जीव से दूर ही हैं। क्रोधादिक चारों कषाय व पुण्य और पाप, ये सब कर्मभाव जीव से भिन्न हैं। जो मनुष्य इस अनुप्रेक्षा को स्थिर करके अपने मन में ध्याता है, वह देह से विवर्जित, निर्मल और उत्तम परमात्मा हो जाता है।

11. अशुचि-भावना

इस देह में कहो कौन-सा गुण दिखायी देता है? जो स्वभावतः अशुचि है उसका मण्डन क्या? जो तरल और विभ्रमपूर्ण नेत्र हैं, वे दूषण-समूहों से दूषित हैं। कहो, नासिका-रन्ध्र में क्या विशुद्धि है, जहाँ स्पष्ट ही अशुद्ध श्लेष्म बहता रहता है? अधर में लोग क्यों अमृतगुण की कल्पना करते हैं, जब कि वहाँ लारका प्रवाह घूमता रहता है? स्तनों में कौन-सा गुण दिखायी देता है, जब कि वे पीव से भरे हुए फोड़ों के सदृश हैं? सघन मांस के बढ़े हुए, दूषित पिण्डों से कौन रति करे? बुद्धिमानों (कवियों) ने कटिमण्डल का न जाने क्यों वर्णन (प्रशंसित) किया है, जब कि वहाँ दो-दो गुह्य छेदों से अशुद्ध मल बहता है? जिस शरीर में वसा, रुधिर, मांस और हड्डियाँ हैं, वहाँ कहो शुद्धि का कौन-सा कारण है? यदि भीतरी व बाहरी विधि (शुद्धि) का विचार करें, तो कौन मनुष्य इस शरीर के साथ रति करेगा? यह शरीर शुक्र व शोणित से उत्पन्न हुआ स्वभावतः अशुचि है, ऐसा जो मनुष्य ध्यान करता है, उसे यह अनुपम अनुप्रेक्षा सिद्धि के मार्ग पर लगा देती है।

12. आस्रव-भावना

जिस प्रकार समुद्र में जल का समूह एकत्र होता है, उसी प्रकार जीव के साथ कर्मों के पुंज का आस्रव होता है। जिस प्रकार खोया हुआ शल्य (लोहे की सूई) चुम्बक से पकड़ा जाता है, उसी प्रकार जीव (कषायों की प्रेरणा से) कर्म ग्रहण करता है। सम्यग्दर्शन के परित्याग में मिथ्यात्वभाव के द्वारा कर्म का सम्मिलित होता है। अज्ञान को दूर करने वाले (केवलज्ञानी) जिनेश्वर ने कहा है कि कर्म अविरत परिणाम (व्रत-हीनता) के कारण संचित होता है। कर्मों का आस्रव क्रोध से, मानसे, माया से तथा लोभ करने से होता है। यदि मन के दमन रूप शील उत्पन्न हो जाये, तो कर्मास्रव रूपी वैरी की सम्भावना नहीं रहती। जो हिंसामय वचन का अनुसरण करता है, उसे कर्मबन्ध होने से कौन बचा सकता है? जो हिंसाभाव से काय-क्रिया करता है, वह तब कर्मों में रति करता है। जो इस शरीर को बन्ध का कारण मानकर, हृदय से इस अनुप्रेक्षा का ध्यान करता है, वह मनुष्य धन्य है। वह शाश्वत सुख रूपी रस का अविराम भाव से पान करेगा।

13. संवर-भावना

जो धीरचित्त होकर सम्यक्त्व का उद्धार करता है, वह दुष्ट-मिथ्यादृष्टि का संवरण करता है। जो शुद्ध क्षमाभाव से व्यापार करता है, वह दुःखकारी क्रोधरूपी जल-प्रवाह को रोक सकता है। जो शुद्ध मार्दव्-भाव से आचरण करता है, उसका मान रूपी स्तम्भ निश्चय से चला जाता है। जो महापुरुष आर्जव गुण में चित्त देता है, वह वञ्चनारूपी विष का निहन्ता हो जाता है। जो इस सुन्दर कायपिण्ड में भी निरीह है, वह निश्चय ही लोभरूपी सिंह को जीत लेता है। जो धर्म में शान्तभाव देकर (रखकर) आचरण करेगा, वह इस मनरूपी मर्कट को वश में ला सकेगा। जो पवित्रभाव से वीतराग की पूजा करता है, वह तत्क्षण ही दुष्ट-राग (मोह) का नाश करता है। जो सब प्रकार से धर्माचरण करता है, भावों में शुद्धि लाता है तथा ध्यान-योग्य करता है, वह केवलज्ञान भी प्राप्त कर लेता है। जो कोई क्षमा व दमन (इन्द्रिय-निग्रह) से सहित, गुणों का धारी होता हुआ इन कर्म-प्रकृतियों का संवर कर लेता है, वह स्वर्ग में सुख भोगकर फिर सिद्धि (मोक्ष) की ओर गमन करता है।

14. निर्जरा-भावना

राग का क्षय करने वाली निर्जरा को दो प्रकार से जानना चाहिए—एक सविपाक निर्जरा, और दूसरी अविपाक निर्जरा। जीव ने चिरकाल से बहुत-सा कर्म संचित किया है, वर्त्तमान में भी उत्पन्न करता है, और उसे बहुत प्रकार से भोगता है। जो कोई ग्रीष्मकाल में सूर्य की किरणों से अपना तन खपाता है, जो वृक्षतल में वर्षाऋतु को सहन करता है, जो शिशिर काल में अपने शिर पर तुषार झेलता है, वह प्रयत्नपूर्वक कर्म का अपहरण करता है। जो दुर्द्धर तप का भार धारण करता है, जो उपवासों-द्वारा अपने शरीर को दुर्बल करता है, तथा जो अनिबद्ध (अप्रासंगिक-अप्रामाणिक) वचनों का संवरण करता है, वह अपने समस्त कर्मों की निर्जरा कर लेता है। जो बाहर विचरण करते हुए मन को मार लेता है, वह मनुष्य तुरन्त ही अपने मन में कर्म का हनन कर देता है। जो चान्द्रायण-विधि से भोजन करता है, जो सौवीर (कांजी) का आहार लेता है, जो बहुत-से कायक्लेश रूप तपों का

अनुसरण करता है, जो बाईस परीषहों को सहन करता है, और जो दोनों प्रकार के (अन्तरंग व बहिरंग) परिग्रह का (त्याग) करता है, वह मनुष्य अविपाक निर्जरा करता है। जिसका कर्म स्वयमेव (अपना फल देकर) समाप्त हो जाता है, उसके सविपाक निर्जरा होती है। जो नर शुद्ध मन होकर मन-वचन-काय से कर्म की निर्जरा करता है, वह देवों के बीच सुख भोगकर निश्चय ही शिवपद में घरं (स्थान) पाता है।

15. लोक-भावना

यह लोक तीन खण्डों में विभाजित है, और चौदह राजू ऊँचा है। पहला खण्ड नरक लोक है जो आकार से ऐसा दिखायी देता है, जैसे मानो उलटा कर मल्लक (शराब-शकोरा) रख दिया गया हो। दूसरा खण्ड तिर्यक् लोक है, जो झालर के समान है, अमेय (असंख्यात योजन प्रमाण) है, और तिर्यंच जीवों का घर है। तीसरा खण्ड अमरालय (स्वर्गलोक) है, जो मुरज (मृदंग) के समान है, जहाँ देवों में भोग की प्रवृत्ति है, विरक्ति नहीं। इसके ऊपर वह प्रसिद्ध सिद्ध क्षेत्र है, जहाँ निमिष मात्र भी दुःख नहीं दिखायी देता है। जैसा उत्तम गुणधारी मुनिगणों ने कहा है, यह समस्त लोक तीन वात-वलयों से घिरा हुआ स्थित है। जिस प्रकार गगनांगन में रवि रहता है, उसी प्रकार इस भुवन को कोई धारण करने वाला नहीं है। जिस प्रकार आकाश क्रिया-विहीन (अकृत्रिम) है उसी प्रकार इस भुवन को किसी मनुष्य ने नहीं बनाया है। जो कोई पाँच महाव्रतों का पालन कर इस लोकानुप्रेक्षा में अपने मनको लगाता है, वह नर धन्य है, सुलक्षण है और वह देवों के अनेकों सुख भोगता है।

16. बोधि-दुर्लभ-भावना

जिनेन्द्र के चरणकमलों में मेरी प्रयत्नपूर्वक भक्ति होवे। मेरा जन्म ऐसे श्रावकों के कुल में होवे, जिनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र की प्रवृत्ति है। जन्म-जन्म में मुझे दोनों प्रकार के (अणुव्रत और महाव्रत रूप) पाँचों व्रत प्राप्त हों। जिसके द्वारा संसार का सार जान लिया गया है, वह सुन्दर जैन-शासन मुझे

प्राप्त होवे। शम, दम, यम व नियम में आदर करने वाले मुनीश्वरों में मेरी भक्ति हो। सुन्दर मोक्ष-सुख के दायक दशलक्षण धर्म में मेरी भक्ति होवे। जरा, जन्म और मरण का अपहरण करने वाली चौदह मार्गणाएँ मेरे मनमें विस्फुरायमान हों। मुझे चौदह गुणस्थान घटित हों। सिद्धों के गुण स्थिर भाव से मेरे मन पर चढ़ जायें। इस प्रकार बोधिपूर्वक अनुस्मरण करके जिसने इस अनुप्रेक्षा को शीघ्र ही अपने हृदय पर चढ़ा लिया, उसने क्षणार्द्ध में अपने को बहुत कुछ शिवरूपी कामिनी के मुख का मण्डन बना लिया (वह मोक्षमार्ग पर लग गया)।

17. धर्म-भावना

धर्म दशलक्षणयुक्त होता है। इसे जो पालन करता है उसका यह जन्म कृतार्थ है। धर्म से तुरंग प्राप्त होते हैं और लीलापूर्वक उसके ऊपर उत्तम चमर ढोले जाते हैं। धर्म से ही जीव विमानों में आनन्द करता है तथा रथों, कुंजरो व यानों-द्वारा संचार करता है। धर्म से ही संसाररूपी महासमुद्र के रत्नों की सारभूत उत्तम प्रचुर लक्ष्मी होती है। धर्म से नाना प्रकार के भोग प्राप्त होते हैं, और लोग आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते। धर्म से सरस्वती मुख में विराजमान होती है, और हे भाई, मनुष्य मनोहर हृदयेच्छित वस्तुओं को प्राप्त करता है। धर्म से सतखण्डे घर तथा नाना सुखकारी उत्तम रत्न मिलते हैं। धर्म से ही देव जिनवरेन्द्रों की सेवा करते हैं और धर्म से ही सब उत्तम देव और नरेन्द्र होते हैं। धर्म से ही मदोन्मत्त युवकों की प्रलयकारी सुलक्षणा नारी होती है। धर्म से ही स्पष्टतः दामोदर (नारायण), जिनवर, प्रतिनारायण, शंकर और स्वर्ग में देव होते हैं। उसी से सकल कल्याण प्राप्त होते हैं। धर्म से ही बलदेव और चक्रवर्ती होते हैं।

18. शीलगुप्त मुनिराज का दर्शन

इन अनुप्रेक्षाओं को मन में स्मरण करता हुआ, स्वयं को विषयों से पराङ्मुख बनाता हुआ, महिलाओं के समूह को तृण समान गिनता हुआ, कर्णों को प्यारी वाणी बोलता हुआ, चलायमान चपल मन को स्थिर करता हुआ, करकण्ड चलते-चलते नन्दन वन में पहुँचा। उसने उस विशाल नन्दनवन को देखा, जो किन्नरों और खेचरों

के कोलाहल से परिपूर्ण था। फिर उसने उस उपवन में उन शीलों के निधान (शीलगुप्त) मुनिराज को देखा, जो क्रोधादि कषायरूप अग्नि को बुझाने के लिए मेघ थे, जिनका शरीर ज्ञान की किरणों से विस्फुरायमान था, जो कामरूपी किरात के हृदय के शल्य थे, जो मोहरूपी भट को पराजित करने वाले मल्ल थे। जो दशलक्षण धर्म के निवास तथा पर समय (मिथ्यामत) रूपी कूड़े-करकट के हुताश थे। जो तपश्रीरूपी कामिनी के बदन में अनुरक्त थे, जो कर्मबन्ध व कर्मों के बन्धक हेतुओं से रहित थे, जो जन्म और मरण का नाश करने वाले थे, दो प्रकार के संयम के निधान थे, तथा शिवकामिनी के सुख के उत्तम तिलक थे।

19. मुनिराजकी स्तुति

मुनिराज के दर्शन से करकण्ड के अंग में हर्ष उत्पन्न हुआ, जिस प्रकार रवि की किरणों के संग से कमलों को। मुनि की तीन प्रदक्षिणा देकर स्तुति करके और फिर उनके युगल चरण-कमल की वन्दना करके करकण्ड प्रार्थना करने लगे— जय हो आपकी, जो अन्धकार का नाश करने के लिए प्रखर सूर्य हैं। आपने देवों, मनुष्यों व फणीन्द्रों को अपने चरणों में झुकाया है। जय हो, मानरूपी महागिरि के वज्रदण्ड। जय हो, मोक्ष (सुख) के भरे हुए अनुपम कुण्ड। जय हो, मोह वृक्ष के छेदक कुठार। जय हो, चतुर्गति रूप सागर के तारक। आप दूर से ही नमस्कार करने वालों के पाप को हरण करते हैं, जिस प्रकार अन्धकार को हटाना दिनकर का स्वभाव ही है। जो कोई प्रतिदिन मन में आपका स्मरण करता है, वह शीघ्र ही मोक्षपुरी को पा लेता है। फिर मुनिवर के चरणकमलों की वन्दना करके करकण्ड उन तपस्वी के आगे बैठ गया और बोला—"हे भट्टारक, मुझे अज्ञान को दूर करने वाला कुछ परम धर्म समझाइए, जिसके करने से दुःख का समूह प्रनष्ट हो और अनुपम मोक्ष-सुख की वृद्धि हो। हे भट्टारक, करुणा करके ऐसा धर्म कहिए, जो लोकमात्र को हितकारी व भव्यों को सद्गमनकारी (या स्वर्गमय) हो।"

20. साधु को आहारदान की विधि

करकण्ड का वचन सुनकर, कामविजयी मुनिराज बोले, और उन्हें ऐसा उत्तम

धर्म समझाने लगे जिससे जन्म सफल हो। वे बोले—"हे राजन्, जो धर्मरूपी वृक्ष है, वह दो प्रकार का (श्रावक धर्म और मुनिधर्म) होता है। जब वह व्रतरूपी जल से सींचा जाता है, तब वह भले प्रकार से बढ़ता है। नरजन्म पाकर विशुद्ध भाव से जो कोई जिनेन्द्र की पूजा करता है, मन में मुनियों के चरणों को धारण करता है, स्वाध्याय करता है, संयमपूर्वक आचरण करता है तथा तप और नियम के सारभूत भार से दिन निकालता है (वह धर्मपालक है)। जो लोगों को चार प्रकार का दान देता है, जो तीन प्रकार के पात्रों में-से प्राप्त हुए किसी भी सुविशुद्ध पात्र को (निम्न विधि से) आहारदान देता है—या तो जिन मन्दिर में जाकर भक्तिपूर्वक पात्र को ले आवे अथवा यथाकाल भ्रमण करते, गृह पर आये हुए साधु को मध्याह्न के समय सुविशुद्ध चित्त से मुनिगणों का भक्त श्रावक 'ठहरिए' कहकर उन्हें पडगाहे, फिर उन्हें लेकर और (बैठने को) पट्ट देकर उनके पदकमलों को धोवे, और उस जल की भी वन्दना करे। फिर जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप व फलों से उनकी पूजा करे। फिर अंजली में जल लेकर उनके पदों की वन्दना करे। जो नर षट्कर्मों का आचरण करता है, जिसका शरीर छह आवश्यकों से युक्त है, जो लेशमात्र भी अशुभभाव (न रखे) का परिहरण करके जिन बिम्ब में अपना मन योजित करे।

21. सम्यग्दर्शन का स्वरूप

"हे राजन्, बहुत कहने से क्या लाभ? जो कोई हृदय से सम्यग्दर्शन का पालन करता है (वही सच्चा धार्मिक है)। यह सम्यग्दर्शन जिनेन्द्र में निश्चयपूर्वक श्रद्धान करने से होता है। मिथ्यात्व से सम्यग्दर्शन नष्ट हो जाता है। सम्यग्दर्शन तत्त्वों के श्रद्धान से तथा शंकादिक दोषों के निग्रह से उत्पन्न होता है। फिर जो कोई मद्य, मांस, मधु, नवनीत (मक्खन), बड़, पीपल (फल) इनका त्याग करता है; एवं पिल्ली, खिरनी, फेंफरी व उदुम्बरी आदि पाँच उदुम्बरों को छोड़ता है (वह श्रावक है)। जो न जूआ खेलता है, न मदिरा पीता है, जो मांस की सर्वथा इच्छा नहीं रखता, जो नयनरम्य वेश्या का त्याग करता है, जो अधर्मरूप आखेट नहीं खेलता, जो नर पराया धन कदापि हरण नहीं करता, एवं जो पर-स्त्री का दूर से ही त्याग करता है। इस प्रकार जो सर्व आदरपूर्वक सातों ही व्यसनों का विषवृक्ष

के समान परिहरण करता है, वह निरन्तर सुखों का अनुभव करता है एवं दुःखरूपी निशाचर का भक्ष्य नहीं बनता।

22. अणुव्रत व गुणव्रत

हे राजन्! व्रतहीन पुरुष का कोई आदर नहीं करता, किन्तु व्रतवान् रंक भी पूज्य होता है। वे व्रत संक्षेप में दो प्रकार के कहे गये हैं। एक गृहस्थव्रत (अणुव्रत) और दूसरे मुनिव्रत (महाव्रत)। अणुव्रत स्थूल होने के कारण कहे गये हैं। वे ही व्रत अतिसूक्ष्म रूप में महाव्रत कहलाते हैं। जो त्रसजीवों की रक्षा करता है, वह मानव पहला (अहिंसा) अणु व्रत धारण करता है। जो स्थूलरूप से झूठ वचन नहीं बोलता, वह ज्ञानी दूसरा (अमृषा) अणुव्रत धारण करता है। जो चोरी करके द्रव्य ग्रहण नहीं करता, वह तीसरा (अचौर्य) अणुव्रत पालता है। जो परायी नारी को माता गिनता है, वह, हे राजन्, चौथा (ब्रह्मचर्य) अणुव्रत धारण करता है। जो परिग्रह में परिमाण करता है, (मर्यादा रखता है) वह, हे नरपति, पाँचवाँ (अपरिग्रह) अणुव्रत धारण करता है। जो कोई निशिभोजन त्याग के साथ दिशागमन का विराम (मर्यादा) रखता है, तथा पशुओं को पाश में फँसाना या बाँध कर रखना छोड़ देता है, एवं भोगों व उपभोगों को स्वल्प कर लेता है, वह देवों के विमान में लीलापूर्वक सुख भोगता है।

23. शिक्षाव्रत

जो कोई जीवों को समताभाव से देखता है, जो हृदय से संयम की परिभावना करता है, जो आर्त और रौद्र ध्यानों का परिहरण करता है, वह उत्तम मनुष्य सामायिक धर्म का धारी है। जो एक मास में चार दुःखहारी उपवास करता है, अर्थात् दो अष्टमी और दो चतुर्दशी के, जो श्रेष्ठ नर चतुर्विध दान देता है, जो जीवों पर दया करता है एवं ज्ञानदान देता है, जो व्याधियों की औषध करता है, वह निश्चय से स्वर्ग प्राप्त करता है। जो भोजन के समय भक्तिपूर्वक खानपान रूप पात्रदान देता है तथा करुणापूर्वक दीन, दुखी व भूखों को भोजन देता है, एवं जो सुहृदय

व्यक्ति अन्तकाल में स्थिर मन से सल्लेखना-द्वारा प्राण विसर्जित करता है (वह सच्चा गृहस्थ है)। इस प्रकार जो इन दुर्द्धर अणुव्रतों, गुणव्रतों व शिक्षाव्रतों का पालन करता है, वह मुक्तिरूपी वधू के मुख का अभिलाषी सुखों की परम्परा को प्राप्त करेगा।

24. महाव्रतों का स्वरूप

हे नरेश्वर, गृहस्थ धर्म इस प्रकार का होता है, ऐसा चिरन्तन परम योगियों ने कहा है। अब, हे राजन्, उन पाँच मुनिव्रतों को सुनो—जहाँ एक क्षण-मात्र के लिए भी माया (मन की वक्रता) का प्रवेश नहीं होता। जो त्रस और स्थावर जीवों की रक्षा करता है, वह असंख्य लाख भोगों को भोगता है। जो अनुराग के कारण झूठ वचन नहीं बोलता, वह अपने वचन से बृहस्पति को भी ज़ीत लेता है। जो पराये धन का कदापि अपहरण नहीं करता, वह इन्द्र को भी चिन्तित कर देता है। जो नौ प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह असीम मोक्ष-सुख को प्राप्त करता है। जो दो प्रकार (अन्तरंग व बहिरंग) परिग्रह का परिहरण करता है, वह संसाररूपी महासमुद्र को पार कर लेता है। हे नरपति, जो मूलगुणों को धारण करता है, उसका शिवरूपी वधू आलिंगन करती है। मुनिवरों के जितने उत्तरगुण हैं, हे राजन्, उनका कोई पार नहीं पा सकता। हे नरपति, जो श्रवणरम्य धर्म दो प्रकार से व्यवस्थित है (गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म) वह मैंने तुम्हें समझा दिया। हे नृपति, जो मनुष्य इन पाँचों व्रतों को अपनी शक्ति-भर पालन करता है, वह कनक व अमररूप मुक्ति-मानिनी का वरण करता है और वह निश्चय ही उसका वर बनता है।

इति मुनि श्री कनकामर-विरचित भव्यजनकर्णावतंस पंचकल्याणविधान-कल्पतरुफल-सम्पन्न करकण्डमहाराजचरित्र में करकण्ड-धर्मश्रवण नामक नौवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ।

संधि—10

1. करकण्ड का मुनिराज से प्रश्न

चम्पाधिप करकण्ड ने उक्त प्रकार धर्मश्रवण करके, सिर नवाकर, मुनीश्वर से फिर कहा—"हे मुनिराज, अब करुणा करके मुझे वह बतलाइए, जो मैं अपने तुच्छ शब्दों में पूछता हूँ। यदि मेरा यह अंग ऐसा सलोना (सुन्दर) हुआ, तो मेरे हाथ पर यह कण्डु (खुजली का दाग) कैसे हुआ? यह शीघ्र कहिए। जब मेरी माता को मेरा पिता अत्यन्त प्यारा था, तब कहिए उनका वियोग किस कर्म से हुआ? किस कर्म के कारण उसका हाथी ने अपहरण किया? तथा वह खेचर मेरी गृहिणी को क्यों ले गया?" यह सुनकर मुनिराज करकण्ड को इस प्रकार बतलाने लगे—हे नरेश्वर, मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। इसी भरत क्षेत्र में विजयार्द्धपर्वत है। उसकी दक्षिण दिशा में लक्ष्मी-सम्पन्न रथनूपुर चक्रवाल नाम का नगर है। वहाँ नील नाम का खेचर राजा हुआ। वह अपने वैरियों से पीड़ित हुआ वहाँ से भाग कर तेरापट्टन में पहुँचा। वहाँ रहते हुए उसने पृथ्वी को वशीभूत किया और अनेक जिनमन्दिर बनवाये। उसी नगर में धनमित्र नाम का वणिक् रहता था, जो प्रतिदिन समस्त गुणी जनों की सेवा करता था। सम्यक्त्वरूपी रत्न के रत्नाकर उस वणिक् के घर में उसकी धनवती नाम की गृहिणी थी। उसके धनदत्त नाम का एक अच्छा ग्वाला था जिसका तन शील से विभूषित था। वह जो कुछ उसका स्वामी कहता था, वह सब करता था; और ऐसा गुणवान् था कि अपनी स्वामिनी के मन को भी हरण करता था।

2. धनदत्त गोप ने कमल तोड़ा

वह ग्वाला एक दिन रात्रि व्यतीत होने पर भैंसों को ले, दक्षिण दिशा में गया। वहाँ उसने एक रम्य सरोवर देखा। वह उत्तम कमलों से ऐसा फूला हुआ था, जैसे (भव्य जनों से) धर्म। वह अति विशाल कमल सरोवर ऐसा सुन्दर दिखायी देता था, जैसे मानो आकाश अपने सुन्दर तारामण्डल-सहित पृथ्वी पर आ गया हो।

कमलपत्रों के ऊपर पुण्डरीक ऐसे शोभायमान थे, जैसे हरी-भरी पृथ्वीपर बड़े-बड़े राजा। अथवा, वे विकसित लाल कमल ऐसे शोभायमान थे, जैसे पद्मरागमणि हरे पात्र में रखे हों। उस सरोवर के मध्य में एक पद्म स्थित था, जैसे मानो तारा गणों से सुशोभित चन्द्र हो। उसे देखकर गोप के मन में चाह उत्पन्न हुई, और वह अनुराग से उसे लेने के लिए सरोवर में प्रविष्ट हुआ। जल में प्रवेश करके उसने उस कमल को तोड़ लिया, मानो एक क्षण में ही सरोवर का सिर काट लिया गया हो। उसे लेकर अपने तन में हर्ष से उत्कण्ठित होता हुआ जब वह सरोवर से निकला, तब उस खूब फूले हुए पद्म के प्राप्त होने से उसका निर्मल मन खूब प्रसन्न हुआ।

3. देव का गोप को आदेश

उस कमल को लेकर ज्योंही वह चला, तभी वहाँ नागकुमार नाम का देव आ पहुँचा। उस देव ने ग्वाले से कहा—"मैं बड़े आदर से इस सरोवर की रक्षा करता हूँ। जिस फूल को लेने में न कोई खेचर समर्थ है, न नाग और न देव, उसे, हे सुन्दर, तूने नर होते हुए भी ले लिया है। अब मैं सर्व आदरपूर्वक तुझ से कहता हूँ, मेरी यह बात मान। जो कोई त्रिभुवन में सबसे बड़ा हो, जिसके चरणों को सब कोई नमस्कार करता हो, तथा जिसके दर्शन से तुरन्त पाप का नाश होता हो, उसीके चरणों में इस पुष्प को चढ़ाना। यदि तू मेरे वचन को नहीं मानेगा, तो हे शुद्धचित्त मित्र, मैं तुझे निश्चय ही मार डालूँगा।" नागकुमार देव ने यह जो वचन कहा, उसे मानकर धनदत्त वहाँ से चला आया। उसने विचार किया—मेरा सेठ ही सबसे बड़ा है, जिसे सभी बड़े-बड़े नर प्रणाम करते हैं; इसलिए जिस फूल की रक्षा आगे देवों ने की है, उससे उसी (सेठ) के चरणों की पूजा करूँ।

4. त्रैलोक्य में सबसे बड़ा कौन?

ऐसा विचारकर, धनदत्त गोप सेठ के समीप गया और उसके सम्मुख विनीत भाव से खड़ा हो गया। तब सेठ ने पूछा—"तू मेरे आगे हाथ जोड़े क्यों खड़ा है?" धनदत्त बोला—"हे तात सेठ, मैं इस कमल से तुम्हारे चरणों की पूजा

करूँगा। सेठ ने पूछा—इसका कारण तो बतला?" उसने कहा—"जब मैंने सरोवर से इस कमल को लिया, तब देव ने मुझ से कहा कि जो त्रिभुवन में बड़ा हो, उसकी पूजा करना। यदि तू पूजा नहीं करेगा, तो मैं तुझे मार डालूँगा। यह सुनकर, हे तात, मैं चिन्तन करता हुआ आया हूँ; मैं इससे तुम्हारे चरणों की पूजा करता हूँ। तुम बड़े हो और जनपद-द्वारा वन्दनीय हो। अतएव इस फूल से आप ही पूजनीय हैं।" यह सुनकर, सेठ बोला—"हे सुन्दर चित्तवान् पुत्र, मुझ से तो नरपति बड़ा है।" तब वह वणिक् उसे लेकर राजा के घर गया। उन्हें राजा की भेंट जिनमन्दिर में हुई। उससे पूर्वोक्त समस्त वृत्तान्त कहकर वह बोला—"तुम बड़े हो, जिसे लोग प्रणाम करते हैं। इसीलिए हम इस सरोवर से प्राप्त फूल से तुम्हारे चरणों की पूजा करने आये हैं" यह सुनकर नरेश्वर बोला—"मुझ से तो मुनिवर निश्चय ही बड़े हैं।"

5. गोप की जिनेन्द्र-पूजा और करकण्ड के रूप में पुनर्जन्म

तब वे यशोधर मुनिराज के आगे फूल चढ़ाने को गये और बोले—"हे वीतराग मुनिवर, तुम बड़े हो, अतएव इस पद्म से हम तुम्हारे पैर पूजेंगे। तब मुनिराज बोले—"मैं बड़ा नहीं हूँ। लोग सबसे बड़ा तो देवों के देव जिनेन्द्र को मानते हैं, जो प्रसिद्ध हैं और कर्मरूपी शत्रुओं का विनाश कर विशुद्ध हुए हैं, जो ज्ञान से उद्दीपित हैं और सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। तू भक्तिपूर्वक उसी जिनेन्द्र देव की पूजा कर।" मुनिराज की यह वाणी सुनकर, धनदत्त ने बिना हाथ-पाँव धोये ही उस उत्तम पद्म से जिन भगवान् की पूजा की, जैसे पूर्व में इन्द्र ने मेरु पर जाकर की थी। लोगों ने उसे साधुवाद दिया, क्योंकि उसका मन भक्ति के भार से भर रहा था। उसी एक फूल के फल से वह धनदत्त का जीव तू चम्पाधिराज के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है। जो कोई विशुद्धिपूर्वक जिन भगवान् की पूजा करता है, वह शिवकामिनी को अपने हाथ से पकड़ लेता है। क्योंकि तूने कीचड़ से विलिप्त हाथ-पैरों से जगतिलक जिनेन्द्र भगवान् की पूजा की थी, इसीलिए तेरे हाथ और पैर में यह कण्ड (खुजली का दाग) हुआ है। मैंने तुझे सुखकारी बात बतला दी।"

6. करकण्ड के माता-पिता का पूर्व जन्म

अपने गुणों से सभा के मन को हरण करने वाले हे नरपति, अब अपने पिता के सम्बन्ध की कथा सुन! इसी भरतक्षेत्र में श्रावस्ती नाम की नगरी है, जहाँ नित्य ही खेचरियाँ रमण करती है। उस नगर में एक प्रसिद्ध मधुरभाषी श्री नागदत्त नाम का वणिक् रहता था। उसकी नागदत्ता नाम की गृहिणी थी, जो चिन्ता रूपी अग्नि को उत्पन्न करने के लिए अरणि रूप थी। वह वणिक् उसका पास नहीं छोड़ता था, और न रात-दिन कहीं सो पाता था। इस वणिक् ने जिसका परिपालन किया था, तथा कामिनी स्त्रियों के करपल्लवों द्वारा लालन कराया था, वह वणिक् पुत्र, हे राजन्, बड़ा हुआ तथा अपने गुणों से विनयशील निकला। कुञ्जर की सूँड़ समान विशाल व स्थूल भुजशाली उस ब्राह्मण पुत्र को एक दिन कमलनेत्री नागदत्ता ने देखा, जिससे उसके ऊपर उसका अनुराग बढ़ा। उस कोमलगात्री सेठानी ने अपने मन में उसका चिन्तन किया।

7. नागदत्ता की पतिपालित ब्राह्मण कुमार पर प्रेमासक्ति

वह पुनःपुनः उस कुमार को देखने लगी, जैसे मानो वह प्रत्यक्ष शरीरवान् कामदेव हो। फिर वह नये सुवर्ण सदृश वर्णवाली, बाल-मृगनयनी एक क्षण में विपरीत चित्त हो गयी। उसका सर्वांग मदन के बाण से ऐसा विद्ध हुआ कि उसे अपने हृदय में कुछ भाता ही नहीं था। वह हाथ मलती और रोमाञ्चित होती, एवं उसे अपनी रोमावली प्रकट करके दिखलाती। कभी स्तन दिखलाती और कभी नीवीबन्ध छोड़ती। कहो कामान्ध मनुष्य क्या-क्या नहीं करता? कामदेव के वाणसमूह से पराजित होकर वह चलायमान चित्त हुई किसी की शंका ही नहीं करती थी। न तो वह परलोक कार्य में उद्यतमन गुरुजनों व सज्जनों की लाज करती, न पुत्र व बन्धुओं का भय खाती और न माता व प्रियतम की लाज करती। जो कुमार सकल गुणों की खान, निपुणमति एवं विनय भाव से संयुक्त था, उससे उसने कोमल वचन-प्रोक्तियों-द्वारा क्या-क्या नहीं कहा?

8. कुमार की विनयशीलता और नागदत्ता की मदोन्मत्तता

उसका वह वचन सुनकर ब्राह्मणकुमार ने अपने कर-पल्लवों को ऊपर उठाकर कान मूँद लिये तथा आँखें फाड़कर और सिर हिलाकर एवं उसे दुष्ट-प्रकृति जानकर, वह कुमार बोला—"हे माँ, यह तू क्या कहती है? क्या तू मदिरा पीकर उन्मत्त हुई है? मैं तेरा पुत्र हूँ, और तू मेरी माता। हृदय से ऐसी बात बोलते हुए तेरी कौन-सी शोभा है? अरी, गगनतल के समान निर्मलता धारण किये हुए, क्या अपने महान् कुल को तू नहीं जानती? सम्मान और दान से सम्मानित होते हुए भी, हे माँ! तूने यह साहस कैसे किया? लोगों की आँखों और कानों का आनन्द देने वाली तेरी बुद्धि, हे माँ, ऐसी विपरीत क्यों हो गयी?" कुमार के इन वचनों की उपेक्षा करके और उसे हाथ से पकड़ कर उस मदोन्मत्त स्त्री ने उसे निश्चल कर दिया। स्त्री एक क्षण में हरि, हर, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवों के भी मन को हरण कर लेती है, फिर जो इसके पिण्ड में पड़ा, वह बेचारा मतिहीन मानव क्या कर सकता है।

9. नागदत्ता और ब्राह्मणकुमार का पाप तथा वणिक् का वैराग्य

स्वभाव से सब लोग कामुक हैं और एकाग्र मन से अपने हृदय में स्त्री का ध्यान करते हैं, फिर यदि कोई उसकी अनुमति पा जाये, तो कहो क्या वह नारी की अवहेलना करेगा? फिर इतने ही में सूर्य अस्ताचल पर पहुँच गया, मानों बहुत प्रहरों (प्रहारों) से सूर (शूर) भी सो गया। नाना वर्णयुक्त सन्ध्या आकाश में छा गयी, मानो वह रक्ताम्बर धारिणी मदन वधू (रति) ही हो। जब वहाँ खूब अन्धकार फैल गया, तब दुराचारिणी स्त्रियाँ महाजनों के पीछे पड़ने लगीं। नागदत्ता ने काम से मोहित हो व अन्धकार हो गया ऐसा हृदय से विचार करके, उस ब्राह्मणकुमार का आलिंगन किया। उसने भी उसके अधर को दन्ताक्षत किया। इतने में ही असती स्त्रियों के मन में दुख उत्पन्न करता हुआ चन्द्र उदित हो गया। चन्द्र के प्रकाश

में वणिक् ने अपनी स्त्री का चरित्र देख लिया, जिससे उसने तुरन्त वनवास का अनुसरण किया। वह राग-रहित तपस्या करके स्वर्ग और वहाँ सुख भोगकर, पुनः च्युत होकर वसुमती के गर्भ में आया व दिवस (समय) व्यतीत होने पर चम्पापुरी में राजा वसुपाल का पुत्र हुआ। जो वह जनपदवल्लभ, जगतिलक, पीन भुजशाली, धाडीवाहन हुआ वही (पश्चात्) पर्वत पर पंचगुरु का ध्यान करके स्वर्ग के अग्रभाग में परिस्थित होकर अमर हो गया।

10. ब्राह्मणकुमार का हाथी के रूप में पुनर्जन्म

वह ब्राह्मण परदार गमन के फल से संसार में निरन्तर भ्रमण करने लगा। वह दुःख भोगकर कलिंगदेश में एक दुर्गम अटवी में हाथी उत्पन्न हुआ। वह अपने किसी कर्म के वशीभूत होकर चम्पानरेश का हाथी बन गया। उधर नागदत्ता परपुरुष का रमण करके संसार रूपी महासमुद्र के दुःखों को प्राप्त हुई। इसी भरतक्षेत्र में ताम्रलिप्ति नाम की पुरी है जिसे देखते हुए सुरपति भी तृप्ति नहीं पाता। वहाँ वसुमित्र नाम का एक साधु वणिक् था और वही नागदत्ता गृहिणी का पति हुआ। सुख से रमण करते हुए उनके एक दिन दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। पहली का नाम धनमती और दूसरी का नाम धनश्री हुआ। नालन्दा नगरी में धनदत्त नाम का वणिक् और उसकी धनमित्रा नाम की गृहिणी थी। उनका पुत्र धनपाल नाम का था, जिसकी वन्दीजन प्रशंसा करते थे। वही पहली कन्या धनमती का पति हुआ।

11. नागदत्ता का पुनर्जन्म

कौशाम्बी नगरी में वसुपाल सेठ रहता था। उसकी वसुमती नाम की सन्तोषदायिनी गृहिणी हुई। उसके शत्रुओं को जीतने वाला तथा जिनेन्द्र के चरणकमलों का अनुरागी वसुदत्त नाम का पुत्र हुआ। उसी को गुणों की पिटारी धनश्री विवाह में दी गयी, जैसे जग के नाथ शिव को चण्डिका। उनके लीलापूर्वक सुख से रमण करते व सुख भोगते हुए बहुत दिन निकल गये। फिर एक दिन निष्ठुर हाथों वाले यम के किंकरों-द्वारा वसुमित्र का हरण हो गया तब वैराग्यभाव से नागदत्ता कौशम्बी

छोड़ अपनी पुत्री के घर आ गयी। कुवलयनेत्री धनश्री अपनी माता को व्रतहीन जानकर तुरन्त जिनमन्दिर में ले गयी और उस मुनियों के चरणकमलों की भक्तिनी ने उसे रात्रिभोजन त्याग का व्रत करा दिया और कहा—"हे माता, अब रात्रि को भोजन मत करना।" यह सुनकर माता बोली—"हे पुत्रि! व्रत नियम की युक्ति दिव्य है।" फिर उस महासती ने सिर झुकाकर मुनिराज के चरणों में नमस्कार करके अपने मन से व्रत ले लिया। इस प्रकार धनश्री की माता ने निशिभोजन त्याग व्रत को संसार का तारक, रोगहारी, एवं गुणसमूहकारी जानकर, जैसा स्वरूप मुनि ने प्रकाशित किया, उस प्रकार ग्रहण कर लिया।

12. नागदत्ता कौशाम्बी की राजपुत्री के रूप में

तत्पश्चात् एक दिन नागदत्ता धनमती के घर गयी। वहाँ बहुत दिन रहने पर, बड़े दुखित मन से उसका निशिव्रत भंग हो गया। जिस प्रकार उसका व्रत एक बार भंग हुआ उसी प्रकार बढ़कर तीन बार भंग हुआ। फिर चौथी बार नागदत्ता शुद्ध मन से धनश्री के घर गई। तत्पश्चात् शीघ्र ही यथाकाल नागदत्ता को यम के दूत ले गये। कौशाम्बी में राजा वसुपाल की प्रिय भामिनी वसुमती थी, उसीकी नागदत्ता अतिशय सुरूपवती पुत्री उत्पन्न हुई। उसके जन्म समय वसुमती माता अपने कर्मों के विपाक से बहुत व्याधियों से ग्रसित हो गयी। तब राजा ने पुत्री को एक पेटी में बन्द किया और उसे लेकर यमुना के प्रवाह में छोड़ दिया। वह रत्नों से विनिर्मित उज्जवल मञ्जूषा यमुना के काले जल में, नागिनी के मस्तक पर निर्मल मणि के समान शोभायमान होती हुई अपने स्थान से बह चली।

13. जलप्रवाह में मञ्जूषा और पद्मावती का वृत्तान्त

वह मञ्जूषा काष्ठ की बनी हुई एक दूसरी पिटारी में सुरक्षित रूप से रखी गयी थी और निच्छिद्र व सुन्दर रूप से गढ़ी गयी थी। वह जमुना के प्रवाह में बहती हुई गंगा में आ पड़ी। कहीं वह जल कल्लोलों-द्वारा डगमगाती, कहीं भँवर में पड़कर घूमती और कहीं अतिसरल प्रवाह में बहती हुई ऐसी शोभायमान हुई

जैसे सागर में जलयान। कुछ दिनों में वह कुसुमपुर में पहुँची। वहाँ कुसुमदत्ता नाम की मालिनी रहती थी। वह पानी भरने गंगा को गयी। तब उसने बहती हुई पिटारी को देखा। उसे जल से निकालकर वह अपने घर ले आयी। उसे देख पति-पत्नि दोनों बड़े सन्तुष्ट और प्रहृष्ट हुए। मञ्जूषा को उघाड़कर जब उन्होंने देखा तक उन्हें मणिकम्बल में लिपटी हुई कन्या दिखायी दी। तपत्श्चात् कुछ दिनो में वह यौवन को प्राप्त हुई और फिर तेरे पिता की दृष्टिं में पड़ी। उस पद्मावती नाम की जन प्रसिद्ध, शरीर कान्ति से सलोनी, अति स्निग्ध युवती को तेरे पिता ने विवाह लिया। यथासमय तू उसके गर्भ में आया। उस अवसर पर उसने महान् हाथी पर चढ़कर पट्टण का परिभ्रमण किया। तब वह कुञ्जर पुराना मोह धारण करता हुआ, उस भय से काँपती हुई रानी को तुरन्त ले भागा।

14. मदनावली और उसका हरण करने वाले खेचर का पूर्व जन्म

पद्मावती किसी प्रकार उस हाथी से छूटी और एक भीषण उद्यान में जा पहुँची। वहाँ से एक माली उसे अपने घर लिवा ले गया। शीघ्र ही उसकी गृहिणी ने उससे कलह की। तब दुःखातुर होकर वह श्मशान में पहुँची और वहाँ तेरा जन्म हुआ। इस प्रकार मैंने तुझे बात कह दी। अब मदनावली की बात सुन। जीवों की भवितव्यता विषम होती है। जिसने पारावत के कुल में जन्म लिया था, वह परेवी बड़ी नयन-रम्य हुई। दही-भात खाती हुई जब वह पिंजरे में अपने रमण (पति) के साथ क्रीड़ा कर रही थी, तब वहाँ भ्रमण करता हुआ एक सर्प आया जो यम के समान भयानक था। उसने उन दोनों के पैर पकड़ लिये। तब तूने करुणा से दौड़कर उनकी रक्षा की। तेरे दिये हुए णमोकार मन्त्र के प्रभाव से वह इस मदनावली के रूप में उत्पन्न हुई और इसी से वह, हे नरेश्वर, तेरे ऊपर इतना स्नेह रखती है। वह परेवा भी खेचर हुआ, तथा वह सर्प भी मुनिवर के द्वारा दिये हुए णमोकार के प्रभाव से विद्याधर हुआ। वही सर्पका जीव खेचर रोष के कारण तेरी वधू को हरकर तुरन्त अपने घर ले गया।

15. पद्मावती का आगमन व मुनिराज से प्रश्न

हे नरपति, जो कुछ तूने पूछा, वह मैंने तुझे अपनी शक्ति के अनुसार कह दिया। यह सुनकर करकण्ड राजा विस्मित हुआ और अपने मन में तपश्चरण का विचार करने लगा। इतने में ही वहाँ पद्मावती आ पहुँची, जहाँ मुनिराज ललित धर्म को प्रकाशित कर रहे थे। उसने सिर झुकाकर भक्ति से मुनिराज की वन्दना की तथा मधुर स्वर में अपने पुत्र से संभाषण किया। फिर उसने ज्ञान शरीरी मुनिवर से पूछा "हे स्वामी! मुझे कोई ऐसा विधान बतलाइए, जिससे इस स्त्रीवेदी का विनाश हो, तथा दुःखों व नरक-निवास का दृढ़ता से निवारण हो।" तब उस संसाररूपी महासमुद्र से शंकित उपभोग-समूहों के सुखों को छोड़ने वाली व दुःखी पद्मावती को, यतीश्वर ने करुणापूर्वक, सुखरूपी सम्पत्ति प्राप्त करने की विधि बतलायी। वे बोले "हे पुत्रि, प्रतिपदा से प्रारम्भ करके लगातार पूर्णितया तक उपवास कर! जो कोई ऐसा करता है, वह मनोवाञ्छित सुखों का अनुभव करता है तथा सुरशय्या पर लीलापूर्वक क्रीड़ा करता है।"

16. उपवासों का फल

प्रतिपदा को उपवास करने से प्रथम स्वर्ग मिलता है तथा द्वितीया के उपवास से दूसरा स्वर्ग। तृतीया के उपवास से तृतीय स्वर्ग में वास होता है, और चतुर्थी से चतुर्थ स्वर्ग में सुखपूर्वक निवास होता है। पञ्चमी से पञ्चम स्वर्ग में सुख मिलता है, और षष्ठी से छठे सर्ग में गमन होता है। फिर सप्तमी से जीव सप्तम स्वर्ग में जाता है, और अष्टमी से आठवें स्वर्ग में शोभायमान होता है। फिर नवमी से नवम देवलोक मिलता है, और दशमी से दशवें में भोग प्राप्त होता है। एकादशी से ग्यारहवें स्वर्ग में, तथा द्वादशी से बारहवें स्वर्ग में, जन्म होता है। त्रयोदशी तेरहवाँ स्वर्ग प्राप्त कराती है, और चतुर्दशी चौदहवें से मेल कराती है। पूर्णिमा का उपवास पन्द्रहवें स्वर्ग के दर्शन कराता है, तथा इन उपवासों का उद्यापन करने वाले को सोलहवाँ स्वर्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार उपवास-विधि पूर्ण करके तथा मनोहर जिनपूजा करके जो कोई आहार-पान ग्रहण करता है, वह इन्हीं सीढ़ियों से शीघ्र चढकर निश्चय ही शिवकामिनी का अनुसरण करता है।

17. उपवास के उद्यापन का विधान

प्रसन्नचित्त व भावयुक्त होकर उपवास का उद्यापन करना चाहिए जिसका विधान निम्न प्रकार है—एक सूक्ष्म व चमकदार लालवस्त्र से आच्छादित करके तथा सूखे ब्रीहि (चावल) से अर्चा करके आगे कुम्भ रखे, और उसे भी सुन्दर कोरे वस्त्र से लपेट दे। फिर सर्वमंगल द्रव्य अर्पित करके पूजा करे। वहाँ पोथी भी स्थापित करे। प्रात:काल शीघ्र जागकर, पात्र को भले प्रकार का दान दे, पोथियों की पूजा करे, एवं जिनेन्द्र देव का अभिषेक करे। इस विधि का तुम भी आदर करो। जिन-मन्दिर को सोलह चन्दोवा तथा घण्टियों की ध्वनियों से झनझनाती हुई सोलह ध्वजाएँ अर्पित करे। (मुनिराज पद्मावती से कहते हैं कि) इस मनोहर व्रत के उपवास से तू अपने मनोवाञ्छित समस्त सुख पा सकेगी।

18. उपवास के फल का दृष्टान्त

फिर पद्मावती ने, सुरेन्द्र को अपने चरणकमलों में झुकाने वाले उन मुनिवरेन्द्र से पूछा—"हे मुनिवर, इस व्रत को कहाँ किसने किया, और फल से क्या पाया?" यह सुनकर मुनीश्वर ने ऐसी बात कही, जिससे उसके मन का संशय मिट जाये। उज्जयिनी के राजा की पुत्री चतुर सुमित्रा ने मनसे इस व्रत को ग्रहण किया, किन्तु पहला उपवास करने के पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गयी। तब वह उज्जयिनी में ही एक विप्र के घर उत्पन्न हुई। उसने इस विधान को केवल दो घड़ी पालन किया था जिससे ही उसके दु:ख का निधान स्त्रीवेद नष्ट हो गया। उसके गर्भ में आते ही पिता की मृत्यु हो गयी। तब उसकी माता ने ही उसके समस्त सुख की व्यवस्था की। एक दिन कलह करके माता ने अपने पुत्र को घर से निकाल दिया। वह रुष्ट होकर नगर के बाहर चला गया और रात्रि को एक जीर्ण मठ में बस रहा। वहाँ एक विद्याधरियों का समूह आया, जिन्हें देखकर वह अपने मन में उल्लसित हुआ।

19. ब्राह्मणपुत्र को विद्याधरी का दिव्य वस्त्र मिला

वह ब्राह्मणपुत्र एक विद्याधरी के आँचल से जा लगा (आँचल को पकड़

लिया)। उसके भय से सब विद्याधरियाँ वहाँ से भाग गयीं। किन्तु वह चीर उसके हाथ चढ़ गया। वह वीर लौटकर अपने घर आया। उसकी माता ने आनन्द मनाया और उस चीर को लेकर वह वणिक्वर के घर गयी। वणिक्वर ने द्रव्य देकर उसे ले लिया और उसने उस भव्य वस्त्र को राजा को अर्पित किया। राजा ने उससे पूछा—"क्या तेरे पास और भी ऐसा वस्त्र है? यदि ले आवे तो मैं तुझे एक हाथी दूँगा?" बनिया ने उस ब्राह्मणपुत्र का नाम बतलाकर कहा—"हे देव, वही आपको ऐसा दूसरा वस्त्र लाकर दे सकता है।" राजा ने द्रव्य देकर उस ब्राह्मणपुत्र को भेजा। और वह लौटकर फिर वन में गया। वहाँ उसने अपने हाथ से एक कटारी को रेतते हुए (पैनी बनाते हुए)एक राक्षसी को देखा। ब्राह्मण ने उसे राक्षसी जानकर उसके सिर पर अपना डण्डा उठाया, तब राक्षसी भय से काँपती हुई हाथ छोड़कर उस ब्राह्मण के आगे खड़ी होकर बोली—

20. ब्राह्मण-द्वारा राक्षसी का वशीकरण

"मैंने तेरा कोई अपराध नहीं किया; तू मेरे ऊपर क्यों कुपित हुआ है?" ब्राह्मण बोला—"मेरा यह डण्डा सैकड़ों राक्षसों को खाने वाला है।" यह बात उस राक्षसी को भायी नहीं। वह अकचकाई आँखों से एवं भय से काँपती हुई तुरन्त ही उसके चरणों से लग गयी और बोली—"हे स्वामी, मुझे मत मारिए। अपने डण्डे को रोकिए। जो कुछ आप कहेंगे, मैं वह करूँगी"। तब वह ब्राह्मणकुमार उसे सुन्दर रूप धारण कराकर अपने घर ले आया। उससे वह कपड़ा माँगकर ब्राह्मण ने तत्क्षण राजा को अर्पित कर दिया। उस वस्त्र को देखकर राजा उस पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रचुर प्रसाद प्रदान किया। प्रधानमन्त्री ने उस भट्ट को (राजा का कृपापात्र बना) देखकर, अपने मन में उसे मार डालने का विचार किया। उस मन्त्री ने उसी क्षण जाकर उस राजा की वल्लभा रानी से कहा कि "तू उससे व्याघ्री का दूध मँगवा।" रानीने तुरन्त कोप शय्या ग्रहण कर ली।

21. मन्त्री का षड्यन्त्र और रानी का हठ

रानी के कोप शय्या ग्रहण करने की बात सुनकर, तुरन्त ही राजा उसके पास

गया। उसने नरेश्वर से वह अपने मन की बात कही। राजा ने उस द्विजवर को आज्ञा दी। द्विजने घर जाकर, उसी राक्षसी को तुरन्त एक रोमाञ्चित व्याघ्री बना लिया और उसे राजा के घर ले जाकर तत्क्षण उस व्याघ्री को अर्पित कर दिया। उसके दर्शनमात्र से सब लोग भाग उठे। ब्राह्मण ने राजा से कहा—"हे देव, इसे आपका मन्त्री दुहेगा।" तब मन्त्री ने भयभीत होकर राजा से कहा—"हे राजन्, इसके दूध से अपने को कोई काम नहीं, इसको जाने दीजिए।" मन्त्री ने मन्त्र (षड्यन्त्र) करके पुनः तुरन्त रानी से कहा—"हे देवि, इससे बोलता हुआ जल मँगाइए। ऐसा कीजिए जिससे जाकर, यह फिर लौटकर न आवे।" रानी ने कहा—"हे राजन् सुनिए, आप बोलने वाला जल मँगाइए।" यह सुनकर उसने द्विजेश्वर से कहा—"इस काम को पूरा करना तुम्हारे ही कौशल से सम्भव है।"

22. पद्मावती का व्रतपूर्वक स्वर्गवास

वह द्विज उस राक्षसी को जल बनाकर ले आया और राजा के आगे रखकर उसे बुलवा दिया। जल बोला—"हे नरपति, मैं इस महन्त (मन्त्री) और रानी दोनों जनों को, खा जाऊँगा।" यह सुनकर नरेन्द्र को आश्चर्य हुआ और उसने उस द्विजेश्वर से सब बात पूछी। उसने मन्त्री की करतूत कह सुनायी। उस पर राजा ने उस अधर्मी को निकाल भगाया। फिर राजा ने उसी ब्राह्मण को मन्त्री पद दिया जिससे उस नगर के लोगों को शान्ति हुई। तत्पश्चात् एक दिन वह सुन्दर ब्राह्मण तप करके स्वर्ग के द्वार पर जा पहुँचा। वहाँ से वह अर्जुन होकर उत्पन्न हुआ। मुनिराज पद्मावती से कहते हैं—"हे पुत्री, इस विधान का ऐसा फल होता है।" तब उस जिनेश्वर की भक्त पद्मावती ने तुरन्त ही वह व्रत ग्रहण कर लिया और उसे पूरा किया। उस दुर्द्धरव्रत के फल से स्त्रीलिङ्ग का हनन करके वह मनोहर पद्मावती संन्यासपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुई और क्षणमात्र में चतुर्थ स्वर्ग में पहुँच गयी।

23. करकण्ड का वैराग्य

यहाँ जब करकण्ड राजा ने यह बात सुनी तब उसे बहुत दुःख बढ़ा। वह दुःख से भयभीत होकर, तथा संसार के ऊपर विरक्तभाव धारण कर जिनेन्द्र के

चरणों में लग गया। उसने सोचा मैं चिरकाल से पाप के घर दुःख, जन्म और मरण की परम्परा का लक्ष्य बन रहा हूँ। फिर उसने करुण-स्वाभावी भट्टारक मुनिराज से कहा—"हे मुनिराज, मेरे पाँव से जिन-प्रतिमा का स्पर्श हो गया है; उस दोष का मुझे प्रायश्चित्त दीजिए और इस पाप को तुरन्त ही क्षय कीजिए। मुझे, हे भट्टारक, अनुमति दीजिए कि मैं तप करूँ, जिससे क्रोधादिक महाभटों को पराजित कर सकूँ।" करुण मुनिराज ने राजा को अनुमति दे दी। तब करकण्ड ने वसुपाल को राज्य देकर व संसार रूपी महादुःख से खिन्न होकर तपश्चरण ग्रहण कर लिया। उसने अपने घुँघराले केशों को उखाड़ डाला, मानो सलबलाते हुए कर्मरूपी भुजंगों को उखाड़ फेंका हो। तथा अन्तःपुर की स्त्रियों को तृण समान गिनकर उसने अपने शरीर के वस्त्रों का भी परिहरण कर दिया। इस प्रकार जब उसने अपने सामन्तों, मन्त्रियों तथा पृथ्वी का त्याग कर, तपश्चरण ले लिया, तब किसी ने दुःख से पूर्ण होकर व नगरी में प्रवेश करके यह बात उसी क्षण कही।

24. राजवधुओं की जिनदीक्षा

तब तुरन्त ही मदनावली सँभलकर, व माला का परिहरण कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। रति वेगा कर्पूर की पिटारी को तृण समान गिनती हुई व छाती पीटती हुई दौड़ पड़ी। कुसुमावली अपने कुसुमों को बिखेरने लगी और रत्नावली रत्नों का परिहार करने लगी। अनंगलेखा मणियों को छोड़ कर चल पड़ी और चन्द्रलेखा एक क्षण में मन्ददेह हो उठी। इस प्रकार नृप में आसक्त वे सभी वधुएँ दौड़ी और मुनिराज के आगे जा खड़ी हुई। नृप को देखकर वे उपशम भाव को प्राप्त हो गयीं और वे सब वहाँ हाथ मलती रह गयीं। उन्होंने भी मुनिवर से प्रार्थना की—"हे स्वामी, हमें भी दीक्षा दीजिए। हम भी तीक्ष्ण व्रत करेंगी।" मुनिराज ने अनुमति दे दी और कामदेव को विनष्ट करने वाली उन सबने व्रत ले लिया। फिर घोर और दुर्द्धर तप करके वे सभी सुरलोक गयीं। इधर करकण्ड हृदय से जिनेन्द्र का स्मरण करते हुए देशान्तर में विहार करने लगे।

25. पञ्चकल्याण व्रत का महात्म्य

फिर भोगों से निर्विण्ण तथा संसाररूपी महासमुद्र से खिन्न हुए करकण्ड ने वह प्रधान व्रत धारण किया, जिसके सद्भाव में अज्ञान नष्ट होता है व जिसके करने से मन निश्चल होता है। जिसके प्रभाव से मनुष्य जन्म में भी बलदेव, नारायण व प्रतिनारायण—जैसे धर्मशील महाबली नर होते हैं। जिसके करने से देवेन्द्र, फणीन्द्र, राजा व वीतराग जिनेन्द्र बनते हैं। जिससे समस्त कल्याण घटित होते हैं, और जिससे उत्तम केवल दर्शन की प्राप्ति होती है। जिससे मनोहर कामदेव होते हैं, तथा समस्त गुणरूपी समुद्र के पार जाते हैं। जिससे मलरहित सम्यग्दर्शन का पालन होता है व शीघ्र ही निर्वाणरूपी विलासिनी का लाभ मिलता है। जो दुःखरूप नरक-निवास का अवरोधक है, तथा जिसके लाभ से केवलज्ञान भी प्राप्त होता है। वह व्रत भुवनतल में निश्चय ही पञ्चकल्याण विधान नाम से प्रसिद्ध है। जिसे केवलज्ञानी महाऋषियों ने सब विधानों का तिलक कहा है।

26. पञ्चकल्याण व्रत की क्रिया-विधान

इस व्रत को चक्रवर्ती ने सिर झुकाकर (निम्न प्रकार से) किया था। जिन-भगवान् का अभिषेक घृत और दधिसहित जल के सैकड़ों घड़ों से पाँच बार किया, तीन बार दिन में और दो बार रात्रि में ? उस समय ऐसी जयध्वनि, करतलध्वनि और तूर्यध्वनि की गयी कि जिससे पृथ्वीतल भर गया। फिर सुप्रसन्न मनसे भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को गर्भावतार कल्याणक मनाया। उस दिन सिद्धि के लिए शुद्ध चरित्रपर्वूक उपवास रखा और रात्रि में क्रिया करके सिद्ध-भक्ति तथा चारित्र-भक्ति व तत्पश्चात् भविष्य के भवों को नाश करने वाली शास्त्र-भक्ति की। फिर दो-सौ जापों सहित शुद्ध उत्तम कायोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् पञ्चमी के दिन सारभूत जन्मावतार व्रत किया। उस दिन भी पूर्वोक्त गुणों से भरी हुई मनोहर क्रिया की। फिर दुःख-विनाशी अष्टमी को उपवास करके योगभक्ति सहित श्रेयस्कर निष्क्रमण (तप) कल्याणक क्रिया की। फिर उसने दशमी के दिन केवलज्ञान कल्याणक क्रिया की, जिसमें पूर्वोक्त क्रिया के अतिरिक्त समस्त सुखों के स्थान रूप श्रुतभक्ति भी की। फिर चतुर्दशी के दिन उस गुणसागर ने आदरपूर्वक उपवास